प्रेम-द्वादशी

●

प्रेमचन्द

प्रेम-द्वादशी

सर्वोत्तम १२ गल्पों का संग्रह

लेखक

प्रेमचन्द

प्रकाशक

सरस्वती-प्रेस, बनारस कैंट।

आठवाँ	सन्	मूल्य
सस्ता संस्करण	१९३८	आठ आने

॥"॥

—सरस्वती-प्रेस, बनारस।

आठवाँ संस्करण, १९३८।

मूल्य ॥)।

॥"॥

॥"॥

: मुद्रक :

श्रीपतराय,

सरस्वती-प्रेस,

बनारस।

॥"॥

भूमिका

हिन्दुस्तानी भाषाओं में कहानी का कोई इतिहास नही है। प्राचीन साहित्य में दृष्टान्तों और रूपको से उपदेश का काम लिया जाता था। उस समय की वे ही गल्पें थीं। उनमें आध्यात्मिक विषयों का ही प्रतिपादन किया जाता था। महाभारत आदि ग्रन्थों मे ऐसे कितने ही उपाख्यान और दृष्टान्त हैं, जो कुछ-कुछ वर्तमान समय की गल्पों से मिलते हैं। सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, कथासरित्सागर और इसी श्रेणी की अन्य कितनी ही पुस्तकें ऐसे ही दृष्टान्तो का सग्रह-मात्र है; जिन्हे किसी एक सूत्र में पिरोकर मालाएँ तैयार कर दी गई हैं। योरप का प्राचीन साहित्य भी Short Story से यही काम लेता था। आज-कल जिस वस्तु को हम Short Story कहते है, वह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का आविष्कार है। भारतवर्ष में तो इसका प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों मे ही हुआ है। उपन्यासों की भाँति आख्यायिकाओं का विकास भी पहले-पहल बॅगला साहित्य मे हुआ, और बंकिमचद्र तथा रवीन्द्रनाथ ने कई उच्चकोटि की गल्पें लिखीं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से हिन्दी-भाषा मे कहानियाँ लिखी जाने लगीं, और तब से इसका प्रचार दिन-दिन बढता जाता है।

प्राचीन गल्पमालाओं का उद्देश्य मुख्य करके कोई उपदेश करना होता था। कितनी ही मालाएँ तो केवल स्त्रियो के चरित्र-दोष दिखाने के लिए ही लिखी गई है। मुसलिम-साहित्य में अलिफ लैला गल्पो का एक बहुत ही अनूठा सग्रह है; मगर उसका उद्देश्य उपदेश नहीं; बल्कि मनोरजन है। इस दूसरी श्रेणी की गल्पें भारतीय साहित्य में नहीं हैं। वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्य-रसास्वादन कराना है, और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है, उतनी ही दूषित समझी जाती है।

लेकिन इसका तात्पर्य यह नही कि वर्तमान गल्प-लेखक कोरी गल्पें लिखता है, जैसी बोस्ताने-खयाल या तिलस्मे-होशरुबा हैं। नहीं, उसका

उद्देश्य चाहे उपदेश करना न हो ; पर गल्पों का आधार कोई-न-कोई दार्शनिक तत्त्व या सामाजिक विवेचना अवश्य होता है। ऐसी कहानी जिसमें जीवन के किसी अग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो सामाजिक रूढियों की तीव्र आलोचना न करती हो, जो मनुष्य में सद्भावों को दृढ न करे या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव न जाग्रत करे, कहानी नहीं है।

योरप और भारतवर्ष की आत्मा मे बहुत अन्तर है। योरप की दृष्टि सुन्दर पर पड़ती है ; पर भारत की सत्य पर। सम्पन्न योरप मनोरजन के लिए गल्प लिखे , लेकिन भारतवर्ष कभी इस आदर्श को स्वीकार नहीं कर सकता। नीति और धर्म हमारे जीवन के प्राण हैं। हम पराधीन हैं ; लेकिन हमारी सभ्यता पाश्चात्य सभ्यता से कही ऊँची है। यथार्थ पर निगाह रखनेवाला योरप, हम आदर्शवादियों से जीवन-सग्राम में बाजी क्यों न ले जाय ; पर हम अपने परपरागत सस्कारों का आधार नहीं त्याग सकते। साहित्य मे भी हमे अपनी आत्मा की रक्षा करनी ही होगी। हमने उपन्यास और गल्प का कलेवर योरप से लिया है ; लेकिन हमे इसका प्रयत्न करना होगा कि उस कलेवर मे भारतीय आत्मा सुरक्षित रहे।

इस सग्रह में जो कहानियाँ दी जा रही हैं, उनमे, इसी आदर्श का पालन करने की चेष्टा की गई है। मेरी कुल कहानियों की सख्या २०० से अधिक हो गई है और आजकल किसी को इतनी फ़ुरसत कहाँ कि वह सब कहानियाँ पढ़े। मेरे कई मित्रों ने मुझसे अपनी कहानियो का ऐसा सग्रह करने के लिए आग्रह किया, जिनमें मेरी सभी तरह की कहानियों के नमूने आ जायँ। यह संग्रह उसी आग्रह का फल है। इसमें कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो अन्य संग्रहों से ली गई है। उनके प्रकाशकों को धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है। कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो अभी तक किसी माला में नहीं निकलीं। इन कहानियों की आलोचना करना मेरा काम नहीं। हाँ, इतना मैं कह सकता हूँ कि मैंने नवीन कलेवर में भारतीय आत्मा को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है।

—प्रेमचन्द।

विषय-सूची

प्रेम-द्वादशी

शांति

जब मैं ससुराल आई, तो बिलकुल फूहड थी। न पहनने-ओढ़ने का सलीका, न बातचीत करने का ढग। सिर उठाकर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आँखें अपने आप झपक जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने विना घूँघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढी हुई थी; पर उपन्यास, नाटक आदि के पढने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था, कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्यों को इतना बुद्धिमान् और सहृदय नहीं समझती थी। मैं दिन-भर घर का कोई न कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता, तो चर्खे पर सूत कातती। अपनी बूढी सास से थरथर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुरजी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा—'नमक जरा अंदाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचाई जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबूजी (पतिदेव) को पसंद न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची-से-ऊँची डिगरियाँ पाई थीं। वह मुझपर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के संबध में उनके

विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत नीचे देखक कदाचित् मन-ही-मन खिन्न होते थे ; परतु उसमें मेरा कोई अपराध न देर कर हमारे रस्म-रवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठकर बातची करने में जरा भी आनन्द न आता। सोने आते, तो कोई न-कोई अँगरेज पुस्तक साथ लाते, और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पू बैठती, कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण-दृष्टि से देखकर उत्त देते—तुम्हें क्या बतलाऊँ, यह 'आसकर वाइल्ड' की सर्वश्रेष्ठ रचना है।' मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, मैं ऐसे विद्वान् पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे तो किसी उजड्ड के घर पड़ना था बाबूजी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिये सौभाग की बात थी।

एक दिन संध्या समय मैं रामायण पढ रही थी। भरतजी रामचन्द्र की खोज में निकले थे। उनका करुण विलाप पढ़कर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। हृदय उमडा आता था सहसा बाबूजी कमरे में आये। मैंने पुस्तक तुरन्त बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भरसक प्रकट न होने देती थी, लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली. और पूछा—रामायण है न?

मैंने अपराधियों की भाँति सिर झुकाकर कहा—हाँ, जरा देर रही थी।

बाबूजी—इसमें शक नहीं, कि पुस्तक बहुत ही अच्छी, भावों से भरी हुई है ; लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाय गया, जैसा अँगरेज या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आवेगा ; लेकिन कहने में क्या हरज है, योरप में आजकल 'स्वाभाविकता' (Realism) का जमाना है। वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं, कि पढकर [illegible] होता है। हमारे यहाँ कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का [illegible] रखना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अ[illegible] विक[illegible] आ जाती है ; और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।

मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया। बोली—मेरे लिए तो यही बहुत है, अँगरेजी पुस्तकें कैसे समझूँ।

बाबूजी—कोई कठिन बात नहीं। एक घंटे भी रोज पढ़ो, तो थोड़े ही समय में काफी योग्यता प्राप्त कर सकती हो ; पर तुमने तो मानो मेरी बातें न मानने की सौगंध ही खा ली है। कितना समझाया, कि मुझसे शर्म करने की आवश्यता नहीं , पर तुम्हारे ऊपर कुछ असर न पड़ा। कितना कहता हूँ, कि जरा सफाई से रहा करो ; परमात्मा सुन्दरता देता है, तो चाहता है, कि उसका शृंगार भी होता रहे, लेकिन जान पड़ता है, तुम्हारी दृष्टि मे उसका कुछ भी मूल्य नहीं। या शायद तुम समझती हो कि मेरे-जैसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम चाहे जैसे भी रहो, आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूँ, तो स्वभावतः मेरी यह इच्छा होती है कि उस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो ; परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार, मेरे सारे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पति की सेवा करने और एकादशी व्रत रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य इससे बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं। उन्हे मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बंदी-दशा देखकर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी मानी गई है , लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक, किसी आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। मेरा-और-तुम्हारा धर्म अलग, आचार विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार सकती हो, कि ऐसी दशा में मेरी जिन्दगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबूजी का कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंजीर की भाँति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के कहे अनुसार

चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली ; अपने देवता को किस भाँति अप्रसन्न करती !

(२)

यह तो कैसे कहूँ, कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम न था। था, और उतना ही था, जितना दूसरी स्त्रियों को होता है। जब बालक और वृद्ध तक शृङ्गार पसन्द करते हैं, तो मैं तो युवती ठहरी। मन भीतर-ही-भीतर मचलकर रह जाता था। मेरे मायके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथों से सूत कातती थीं, और जुलाहे से उसी सूत के कपडे बुनवा लिये जाते थे। बाहर से बहुत कम कपडे आते थे। मैं कभी ज़रा महीन कपड़ा पहनना चाहती या शृङ्गार की रुचि दिखाती, तो अम्माँ फ़ौरन टोंकतीं और समझातीं, कि बहुत बनाव सँवार भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देता। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी वह मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं, तो झिड़कने लगतीं ; परन्तु अब बाबूजी की ज़िद से मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृंगार पर नाक-भौं सिकोड़तीं ; पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबूजी की प्रेम-परिपूर्ण-दृष्टि के लिए मैं झिडकियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी। वह अधिक प्रसन्न-चित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फ़ैशनेबुल साड़ियाँ, सुन्दर जाकटें, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते ; पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबूज़ी के ही सामने पहनने के लिए रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने पति की प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकती ? अब घर के काम-काज में मेरा जी न लगता था। मेरा अधिक समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभी तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहनकर निकलने का मुझे साहस न होता था ;

पर मुझे उनकी शिक्षा पूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपए महीना कमाता है, तो घर में चेरी बनकर क्यों रहूँ? यों अपनी इच्छा से चाहे जितना काम करूँ; पर ये लोग मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं? मुझमें आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्माँ मुझे कोई काम करने को कहतीं, तो मैं अदबदाकर उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा—सवेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोट बना लो। मैं बात अनसुनी कर गई। अम्माँ ने कुछ देर तक मेरी राह देखी; पर जब मैं अपने कमरे से न निकली, तो उन्हे गुस्सा हो आया। वह बडी ही चिड़चिडी प्रकृति की थीं। तनिक सी बात पर तुनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था, कि मुझे बिलकुल लौंडी ही समझती थीं। हाँ, अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आतीं; बल्कि मैं तो यह कहूँगी, कि उन्हे सिर चढा रखा था। वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं—तुमसे मैंने 'दालमोट बनाने को कहा था, बनाया? मै कुछ रुष्ट होकर बोली—अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्माँ—तो तुम्हारी जान में दिन-भर पडे रहना ही बड़ा काम है! यह आजकल तुम्हे हो क्या गया है! किस घमड मे हो? क्या यह सोचती हो, कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ? इस घमण्ड में न भूलना! तुम्हारा पति लाख कमाये, लेकिन घर में राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है, तो तुम्हे मालकिन बनने की हवस हो रही है, लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आई थीं, मैंने ही उसे पढा-लिखाकर इस योग्य बनाया है। वाह! कल की छोकरी और अभी से यह गुमान!

मैं रोने लगी। मुह से एक बात न निकली। बाबूजी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ रहे थे। ये सब बातें उन्होंने सुनीं। उन्हे बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब वह घर आये तो बोले—देखा तुमने आज अम्माँ का क्रोध? यही अत्याचार है, जिसमे स्त्रियों को अपनी जिन्दगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो

जाता है, और मनुष्य की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, प्रकाश और वायु के बिना पौदे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बडा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुँह नहीं खोल सकता। मेरे ऊपर उनका बहुत बडा अधिकार है, अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिये लज्जा की बात होगी, और यही बन्धन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं, तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिडकियों को सहे जाओ, या अपने लिये कोई दूसरा रास्ता ढूंढो। अब इस बात की आशा करना, कि अम्माँ के स्वभाव मे कोई परिवर्तन होगा, बिलकुल भ्रम है। बोलो, तुम्हे क्या स्वीकार है?

मैंने डरते-डरते कहा—आपकी जो आज्ञा हो, वह करूँ। अब कभी न पढ़ूँ-लिखूँगी, और जो कुछ वह कहेंगी, वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न हैं, तो यही सही—मुझे पढ-लिखकर क्या करना है?

बाबूजी—पर यह मैं नहीं चाहता। अम्माँ ने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढती ही जायँगी। मैं तुम्हे जितना ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हे बुरा लगेगा, और उनका गुस्सा तुम्हीं पर उतरेगा। उन्हे पता नहीं, कि जिस आबहवा मे उन्होंने अपनी ज़िन्दगी बिताई है, वह अब नहीं रही। विचार-स्वातन्त्र्य और समयानुकूलता उनकी दृष्टि मे अधर्म से कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहर मे चलकर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती; इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पडेगी।

मैं इस तजवीज के विरुद्ध कुछ न बोली, यद्यपि मुझे अकेले रहने से भय लगता था, तथापि वहाँ स्वतन्त्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

(३)

उसी दिन से अम्माँ ने मुझसे बोलना छोड दिया। महरियों, पडोसियों और ननदों के आगे मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत

बुरा मालूम होता था। इसके बदले यदि वह कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं, तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदय से उनकी मान मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य पर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था, कि मैंने बाबूजी पर कोई मोहन-मंत्र फूँक दिया है, वह मेरे इशारों पर चलते हैं; पर यथार्थ में बात उल्टी ही थी।

भाद्र-मास था। जन्माष्टमी का त्योहार आया। घर में सब लोगों ने व्रत रखा। मैंने भी सदैव की भाँति व्रत रखा। ठाकुरजी का जन्म रात को बारह बजे होने वाला था, हम सब बैठी गाती बजाती थीं। बाबूजी इन असभ्य व्यवहारों के बिलकुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गई, तो मुझे समझाने लगे—इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है, पर इस गाने-बजाने से क्या फायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबूजी स्वयं इस मार्ग का अनुसरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यन्त प्रशंसा करते; पर उसका पाठ कभी न करते थे। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानो पुष्प-वृष्टि होने लगती थी; पर मैंने उन्हे कभी कोई उपनिषद् पढते नहीं देखा। वह हिन्दू धर्म के गूढ़ तत्व-ज्ञान पर लट्टू थे; पर इसे समयानुकूल नहीं समझते थे। विशेषकर वेदान्त को तो भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते, कि इसी वेदान्त ने हमको चौपट कर दिया, हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अब तक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं। सतोष ने ही भारत को गारद कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ थी? हाँ, अब ज्ञान पड़ता है, कि वह योरप-सभ्यता के चक्कर में पडे हुए थे। अब वह स्वय ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंडा हो चला है।

(४)

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये। बाबूजी ने पहले ही एक-दो मंजिला मकान ले रखा था—सब तरह से सजा-सजाया। हमारे यहाँ पाँच नौकर थे—दो स्त्रियाँ, दो पुरुष और एक महराज। अब मैं घर के कुल काम-काज से छुट्टी पा गई। कभी जी घबराता, तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

यहाँ फूल और पीतल के वर्तन बहुत कम थे। चीनी की रकाबियाँ और प्याले मे आलमारियो मे सजे रखे थे। भोजन मेज पर आता था। बाबूजी बडे चाव से भोजन करते। मुझे पहले कुछ शर्म आती थी; लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज ही पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता, तो गाडी तैयार कराई जाती। बाबूजी कहते—यही फैशन है!

बाबूजी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भली-भाँति खर्च भी न चलता था। कभी-कभी मैं उन्हे चिन्ताकुल देखती, तो समझाती, कि जब आय इतनी कम है, तो व्यय इतना क्यों बढा रखा है? कोई छोटा-सा मकान ले लो। दो नौकरों से भी काम चल सकता है; लेकिन बाबूजी मेरी बातों पर हँस देते और कहते—मैं अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा अपने-आप क्यों पीटूँ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ, कि हम लोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौडी आवेगी। खर्च बढना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने के योग्य होते है। संतोष दरिद्रता का दूसरा नाम है।

अस्तु, हम लोगों का खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह मे तीन बार थियेटर जरूर देखने जाते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा, कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की इच्छा नहीं।

उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भोगने के लिए ही दी हैं। उनको भोगना ही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घर मे एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फँसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गई। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय मालूम होने लगीं। देवतों पर से विश्वास भी उठ गया।

धीरे-धीरे यहाँ के बडे लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक बिलकुल नई सोसाइटी थी। इसका रहन-सहन, आहार-व्यवहार और आचार-विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसाइटी में ऐसी जान पडती, जैसे मोरों में कौआ। इन लेडियों की बातचीत कभी थियेटर और घुडदौड़ के विषय मे होती, कभी टेनिस, समाचार-पत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेखों पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, फुर्ती और चपलता पर मुझे अचभा होता। ऐसा मालूम होता, कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियाँ है। वे बिना घूँघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहस पर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जाने की चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिन्तित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे, परन्तु मिसेज दास के माथे पर चिन्ता का चिह्न तक न था। मिस्टर बागडी नैनीताल मे तपेदिक का इलाज करा रहे थे; पर मिसेज बागडी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्था मे मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण-शक्ति थी, जो मुझे खींचे-लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती, और मेरा भी जी चाहता कि उन्हीं की भाँति मैं निस्सकोच हो जाती। उनका अँगरेजी वार्त्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियाँ हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्त्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच में मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा; यद्यपि बाबूजी पहले से मेरा अधिक आदर करते, मुझे सदैव 'डियर—डार्लिंग' आदि कहकर पुकारते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट

मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता, मानो ये बातें उनके हृदय से नहीं, केवल मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार मे हार्दिक भावो की जगह अलकार ज्यादा होता था; किन्तु और भी अचम्भे की बात तो यह थी, कि अब मुझे बाबूजी पर वह पहले की-सी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी सिर की पीड़ा से मेरे हृदय मे पीडा न होती थी। मुझमे आत्म-गौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृङ्गार इसलिए करती थी, कि ससार मे यह भी मेरा एक कर्त्तव्य है, इसलिए नहीं, कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अब मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिये जीती थी। त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी, परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबूजी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड थी। बाबूजी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता मे काला धब्बा समझते थे। कदाचित् वह दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिए परदे में नहीं है, कि वह रूप तथा वस्त्राभूषणों मे किसी से कम है; बल्कि इसलिए, कि अभी उसे लज्जा आती है। वह मुझे किसी बहाने से बारम्बार परदे के निकट बुलाते, जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और वस्त्राभूषण देख लें। अन्त मे कुछ दिन बाद मेरी झिझक गायब हो गई। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबूजी के साथ बिना परदे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत आई। अन्त को मैंने क्लब मे जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था, मानो वे लोग व्यायाम के लिए नहीं; बल्कि फैशन के लिए टेनिस खेलने आते थे। वे कभी न भूलते थे, कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काम में, झुकने में, दौड़ने में, उथकने मे एक कृत्रिमता होती थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखावा है।

क्लब में इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वाँग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अँगरेजी के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिनमें कोई सार न होता था, नकली हँसी हँसते थे, जिसका कोई अवसर न होता था, स्त्रियों की वह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की वह भावशून्य स्त्री पूजा मुझे तनिक भी न भाती थी। चारों ओर अँगरेजी चाल-ढाल की एक हास्यजनक नकल थी; परन्तु क्रमशः मैं भी वही रंग पकडने और उन्हीं का अनुकरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ, कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृङ्गार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब मे सबकी आँखो में चुभ जाऊँ! अब मुझे बाबूजी की सेवा-सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृङ्गार की धुन रहती थी। यहाँ तक कि यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, लोगों से अपने सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर मुझे एक अभिमान-मिश्रित आनन्द का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमाएँ विस्तृत हो गई। वह दृष्टिपात, जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ को खडा कर देता, और वह हास्य-कटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्माद-पूर्ण हर्ष होता था, परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आन्तरिक दृष्टि डालती, तो मुझे बडी घबराहट होती थी। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी-कभी इरादा करती, कि क्लब न जाऊँगी; परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती। मैं अपने वश में न थी। मेरी सत्कल्पनाएँ निर्बल हो गई थीं।

(५)

दो वर्ष और बीत गये, और अब बाबूजी के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिंतित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता, कि इन्हे कठिन चिन्ता ने घेर रखा है, या कोई बीमारी हो गई है। मुँह बिलकुल सूखा रहता था। तनिक-तनिक-सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते, और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले वह सौ काम छोड़कर क्लब अवश्य जाते थे, वहाँ गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी, पर अब अधिकतर अपने कमरे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए समाचार पत्र और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी समझ में न आता, कि बात क्या है!

एक दिन उन्हें बड़े ज़ोर का बुखार आया, दिन-भर बेहोश पड़े रहे, परन्तु मुझे उनके पास बैठने मे अनकुस-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास मे लगा हुआ था। उनके पास जाती और पल-भर मे फिर लौट आती थी। टेनिस का समय आया, तो दुबिधा मे पड़ गई, कि जाऊँ या न जाऊँ। देर तक मन में यह संग्राम होता रहा। अन्त को मैंने यही निर्णय किया, कि मेरे यहाँ रहने से यह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे, इससे मेरा यहाँ बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, और रैकेट लेकर क्लब-घर जा पहुँची। वहाँ मैंने मिसेज दास और मिसेज बागची से बाबूजी की दशा बतलाई, और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे, और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा, तो मैं एक ठंडी आह भरकर कोर्ट मे जा पहुँची और खेलने लगी।

आज से तीन वर्ष पूर्व बाबूजी को इसी प्रकार बुखार आ गया था, मैं रात-भर उन्हे पखा झलती रही थी। हृदय व्याकुल था, और यही जी चाहता था, कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु यह उठ बैठें। पर अब हृदय तो स्नेह-शून्य हो गया था, दिखावा अधिक था। अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गई थी। मैं सदैव की भाँति रात को नौ बजे लौटी। बाबूजी का जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने मुझे केवल दबी दृष्टि से देखा, और करवट बदल ली, परन्तु मैं लेटी, तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता रहा।

मैं अब अँगरेजी उपन्यासों को समझने लगी थी। हमारी बात-चीत अधिक उत्कृष्ट और आलोचनात्मक होती थी।

हमारी सभ्यता का आदर्श अब बहुत ही उच्च हो गया था। हमको अब अपनी मित्र-मंडली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने मे सकोच होता था। अब हम अपने से छोटी श्रेणी के लोगो से बोलने में अपना

अपमान समझते थे। नौकरों को अपना नौकर समझते थे, और बस, हमको उनके निजी मामलों से कुछ मतलब न था। हम उनसे अलग रहकर उनके ऊपर अपना रोब जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी, कि वह हम लोगों को साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी, उनमें शिष्टता न थी। खैर।'

बाबूजी का जी दूसरे दिन भी न सँभला। मैं क्लब न गई; परन्तु जब लगातार तीन दिन तक उन्हे बुखार आता गया, और मिसेज दास ने बारम्बार एक नर्स बुलाने का आदेश किया, तो मैं सहमत हो गई। उस दिन से रोगी की सेवा-शुश्रूषा से छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गई थी; परन्तु मेरा जी वहीं लगा रहता था, बल्कि अपने भीरुता पूर्ण त्याग पर क्रोध भी आता था।

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई एक अँगरेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा, कि बाबूजी का बुखार असाध्य हो जाय, तो? परन्तु इस विचार से मुझे लेश-मात्र भी दुःख न हुआ। मैं इस शोकमय कल्पना का मन-ही-मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज दास, मिसेज नायडू, मिसेज श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज शरणा अवश्य ही मातमपुर्सी करने आवेंगी। उन्हे देखते ही मैं सजल नेत्र हो उठूँगी, और कहूँगी—बहनो! मैं लुट गई। हाय, मैं लुट गई! अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है! परन्तु मेरी अवस्था पर दुःख न प्रकट करो। मुझपर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा की मोक्ष के विचार से सह लूँगी।

मैंने इस प्रकार मन में एक शोक-पूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूँगी।

इस घटना की शहर-भर में चर्चा हो जायगी। सारे कैंटोन्मेट के लोग मुझे समवेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दूँगी कि मैं प्रत्येक शोक-पत्र का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोने के सिवा और किसी काम के

लिए समय नहीं है। मैं इस हमदर्दी के लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूँ, और उनसे विनय-पूर्वक निवेदन करती हूँ, कि वे मृतक की आत्मा की सद्गति के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी, कि नर्स ने आकर कहा—आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया; लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गई। बाबूजी को बीमार हुए लगभग एक मास हो गया था। वह अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनय-पूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उन पर दया आई। बैठ गई, और ढाढ़स देते हुए बोली—क्या करूँ? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊँ?

बाबूजी आँखें नीची करके अत्यन्त करुणा-भाव से बोले—मैं यहाँ कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा—क्या आप समझते हैं, कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से अच्छी होगी?

बाबूजी बोले—क्या जाने क्यों मेरा जी अम्माँ के दर्शनों को लालायित हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं—यह आपका केवल विचार-मात्र है।

बाबूजी—शायद ऐसा ही हो; लेकिन मेरी यह विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं, इस जीवन से ही दुःखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा।

बाबूजी फिर बोले—हाँ, मैं इस जिंदगी से तंग आ गया हूँ। मैं अब समझ रहा हूँ, कि मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरु-भूमि है। मैं इस प्रकार के जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था, परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है। इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया, और उसे आदि से अन्त तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय की शांति है, न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त, अशान्तिमय, स्वार्थ-पूर्ण विलास-

शुष्क जीवन है। यहाँ न नीति है न धर्म, सहानुभूति न सहृदयता। परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्माँ को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहाँ आवेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न देखा जायगा। उन्हें इस सोसाइटी की हवा अभी नहीं लगी, वह आवेंगी। उनकी वह ममता-पूर्ण दृष्टि, वह स्नेह पूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिनके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

मैं समझी, कि यह बुखार की बकझक है। नर्स से कहा—जरा इसका टेंपरेचर तो लो, मैं अभी डाक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थरमामीटर निकाला, परन्तु ज्यों ही वह बाबूजी के समीप गई, उन्होंने उसके हाथ से वह यंत्र छीन-कर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। फिर मेरी ओर एक अवहेलना पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लब-घर जाती हूँ, जिसके लिये तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। खैर, उधर से घूमती हुई यदि डाक्टर के पास जाना, तो उनसे कह देना कि यहाँ टेंपरेचर उस विन्दु पर आ पहुँचा है, जहाँ आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गई। हृदय में एक करुण चिन्ता का संचार होने लगा। गला भर आया। बाबूजी ने नेत्र मूँद लिये थे, और उनकी साँस वेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डाक्टर के पास भेजूँ। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतने में बाबूजी उठ बैठे और विनीत भाव से बोले—श्यामा, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी, पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूँ। मैं अब फिर अपने घर जाकर वही पहले की-सी जिन्दगी बिताना चाहता हूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो गई है, और यही मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारी-

रिक नहीं, मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हे वही पहले की सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घर का काम-काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वर से डरनेवाली, पति श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ, तुम मुझे निराश न करोगी। तुमको सोलहो आने अपनी बनाना और सोलहो आने तुम्हारा बनना चाहता हूँ। मैं अब समझ गया, कि उसी सादे पवित्र जीवन मे वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना; नहीं तो इस कष्ट और शोक का न जाने कितना भयकर परिणाम हो!

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन मे सोचने लगी—इस स्वतन्त्र जीवन में कितना सुख था? ये मजे वहाँ कहाँ? क्या इतने दिन स्वतन्त्र वायु मे विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजडे मे जाऊँ? वही लौंडी बनकर रहूँ? क्यों इन्होने मुझे वर्षों स्वतन्त्रता का पाठ पढाया, वर्षों देवतो की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत उपवास की बुराई की, हँसी उड़ाई? अब जब मैं उन बातो को भूल गई, उन्हे मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अन्धकूप मे ढकेलना चाहते है। मैं तो इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है? लेकिन बाबूजी के मुख पर एक ऐसी दीनता पूर्ण विवशता थी, कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली—आखिर आपको यहाँ क्या कष्ट है?

मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी।

बाबूजी फिर उठ बैठे, और मेरी ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोले—बहुत ही अच्छ होता, कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेती। क्या अब मैं तुम्हारे लिये वही हूँ, जो आज से तीन वर्ष पहले था? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा-प्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार होकर तुम्हारे लिये वह नहीं रहा जो पहले था—तुमने चाहे इसका अनुभव न किया हो; परन्तु मैं स्वय कह रहा हूँ—तो मैं कैसे अनुमान करूँ, कि उन्हीं भावो ने तुम्हे स्खलित न किया होगा? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न देख पड़ते हैं, कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों

का और भी अधिक प्रभाव पडा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हे उसकी लेशमात्र भी सुध नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया, कि सभ्यता, स्वेच्छाचारिता का भूत स्त्रियो के कोमल हृदय पर बडी सुगमता से कब्जा कर सकता है। क्या अब से तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हे यह साहस हो सकता था, कि मुझे इस दशा में छोडकर किसी पडोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं? मैं बिछौने पर पड़ा रहता, और तुम किसी के घर जाकर कलोलें करतीं? स्त्रियो का हृदय आधिक्य-प्रिय होता है; परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कही ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्य का फल आत्मिक एव शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी, पर इस आधिक्य का परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दास के सम्मुख हँसतीं-बोलतीं, तो मैं या तो तुम्हें मार डालता, या स्वय विष-पान कर लेता; परन्तु बेहयाई ऐसे जीवन का प्रधान तत्त्व है। मैं सब कुछ स्वयं देखता और सहता हूँ, कदाचित् सहे भी जाता, यदि इस बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो, तो मुझे सन्तोष न होगा; क्योंकि मुझे यह विचार दुखित करता रहेगा, कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं है। मैंने अपने को उस इन्द्र-जाल से निकालने का यह निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रिय-लिप्सा का सभ्यता और भ्रष्टता का विचार-स्वातन्त्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बाबूजी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यत्रणा असह्य हो गई। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी। अन्तरात्मा ने कहा—अवश्य! मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी; पर अब वह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य है। मिस्टर दास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खिच गया। कल मेरे हृदय पर इस दुरात्मा की बातो का कैसा नशा छा

गया था, यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबूजी की आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े ही से प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर हो गये थे। उनके बदले ये शब्द ज्वलत अक्षरों मे लिखे हुए नजर आये—तूने फैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमे अपने स्वत्वों का ज्ञान हो आया है, तुझमे जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक हो गई है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ हृदय और शिक्षा-सम्पन्न भी हो गई; लेकिन तेरे आत्मिक-बल का विनाश हो गया; क्योंकि तू अपने कर्तव्य को भूल गई।

मैं दोनो हाथ जोड़कर बाबूजी के चरणों पर गिर पड़ी। कंठ रुध गया, एक शब्द भी मुँह से न निकला, अश्रु-धारा बह चली। अब मैं फिर अपने घर पर आ गई हूँ। अम्माँजी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं, बाबूजी सन्तुष्ट देख पड़ते हैं। वह अब स्वय प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन करते है।

मिसेज दास के पत्र कभी-कभी आते है। वह इलाहाबादी सोसाइटी के नवीन समाचारों से भरे होते है। मिस्टर दास और मिस भाटिया के सम्बन्ध मे कलुषित बातें उड़ रही है। मैं इन पत्रों का उत्तर तो दे देती हूँ, परन्तु चाहती हूँ कि वह अब न आते, तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनों की याद दिलाते है, जिन्हे मैं भूल जाना चाहती हूँ।

कल बाबूजी ने बहुत-सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमे आसकर वाइल्ड की कई पुस्तके थीं। वह अब अँगरेजी-पुस्तकें बहुत कम पढते है। उन्हे कार्लाइल, रस्किन और एमरसन के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत मे फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ; क्योंकि इस बीच में चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है।

बैंक का दिवाला

लखनऊ नेशनल-बैंक के बडे दफ्तर में लाला साईंदास आरामकुर्सी पर लेटे हुए शेयरों का भाव देख और सोच रहे थे, कि इस बार हिस्सेदारों को मुनाफा कहाँ से दिया जायगा ! चाय, कोयला या जूट के हिस्से खरीदने, चाँदी सोने या रुई का सट्टा करने का इरादा करते ; लेकिन नुकसान के भय से कुछ तय न कर पाते थे । नाज के व्यापार में इस बार बड़ा घाटा रहा, हिस्सेदारों के ढाढस के लिए हानि-लाभ का कल्पित व्योरा दिखाना पडा और नफा पूँजी से देना पड़ा । इससे फिर नाज के व्यापार में हाथ डालते जी काँपता था ।

पर रुपए को बेकार डाल रखना असम्भव था । दो-एक दिन मे उसे कहीं-न-कहीं लगाने का उचित उपाय करना जरूरी था ; क्योंकि डाइरेक्टरों की तिमाही बैठक एक ही सप्ताह में होनेवाली थी, और यदि उस समय कोई निश्चय न हुआ, तो आगे तीन महीने तक फिर कुछ न हो सकेगा, और छःमाही के मुनाफे के बँटवारे के समय फिर वही फरजी कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसका बार-बार सहन करना बैंक के लिए कठिन है । बहुत देर तक इस उलझन में पडे रहने के बाद साईंदास ने घण्टी बजाई । इस पर बगल के दूसरे कमरे से एक बगाली बाबू ने सिर निकालकर झाँका ।

साईंदास—ताता-स्टील-कम्पनी को एक पत्र लिख दीजिये, कि अपना नया बैलेंस शीट भेज दें ।

बाबू—उन लोगों को रुपया का गरज नहीं । चिट्ठी का जवाब नहीं देता ।

साईंदास—अच्छा, नागपुर की स्वदेशी मिल को लिखिये ।

बाबू—इसका कारोबार अच्छा नहीं है । अभी उसके मजदूरों ने हड़ताल किया था । दो महीना तक मिल बन्द रहा ।

साईंदास—अजी तो कहीं लिखो भी! तुम्हारी समझ मे सारी दुनिया बेईमानो से भरी है।

बाबू—बाबा, लिखने को तो हम सब जगह लिख दें, मगर खाली लिख देने से तो कुछ लाभ नही होता।

लाला साईंदास अपनी कुल-प्रतिष्ठा और मर्यादा के कारण बैंक के मैनेजिग डाइरेक्टर हो गये थे; पर व्यावहारिक बातो से अपरिचित थे। यही बगाली बाबू इनके सलाहकार थे, और बाबू साहब को किसी कारखाने या कपनी पर भरोसा न था। इन्ही के अविश्वास के कारण पिछले साल बैंक का रुपया सन्दूक से बाहर न निकल सका था, और अब वही रग फिर दिखाई देता था। साईंदास को इस कठिनाई से बचने का कोई उपाय न सूझता था। न इतनी हिम्मत थी, कि अपने भरोसे किसी व्यापार में हाथ डालें। बेचैनी की दशा मे उठकर कमरे मे टहलने लगे, कि दरबान ने आकर खबर दी—बरहल की महारानी की सवारी आई है।

(२)

लाला साईंदास चौंक पडे। बरहल की महारानी को लखनऊ आये तीन-चार दिन हुए थे, और हर एक के मुँह से उन्ही की चर्चा सुनाई देती थी। कोई उनके पहनावे पर मुग्ध था, कोई सुन्दरता पर, कोई उनकी स्वच्छद वृत्ति पर। यहाँ तक कि उनकी दासियाँ और सिपाही आदि भी लोगों की चर्चा के पात्र बने हुए थे। रायल होटल के द्वार पर दर्शको की भीड़-सी लगी रहती है। कितने ही शौकीन, बेफिक्रे लोग इतर-फरोश, बजाज या तम्बाकूगर का वेष धरकर उनका दर्शन कर चुके थे। जिधर से महारानी की सवारी निकल जाती, दर्शकों के ठट लग जाते थे। वाह-वाह, क्या शान है! ऐसी इराकी जोडी लाट साहब के सिवा किसी राजा-रईस के यहाँ तो शायद ही निकले, और सजावट भी क्या खूब है! भई, ऐसे गोरे आदमी तो यहाँ भी नही दिखाई देते। यहाँ के रईस तो मृगांक, चन्द्रोदय और ईश्वर जाने, क्या-क्या खाक-बला खाते

हैं ; पर किसी के बदन पर तेज या प्रकाश का नाम नहीं। ये लोग न जाने क्या भोजन करते और किस कूएँ का पानी पीते हैं, कि जिसे देखिये, ताज़ा सेब बना हुआ है। यह सब जल-वायु का प्रभाव है।

बरहल उत्तर दिशा में नैपाल के समीप, अग्रेजी-राज्य में एक रियासत थी। यद्यपि जनता उसे बहुत मालदार समझती थीं ; पर वास्तव मे उस रियासत की आमदनी दो लाख से अधिक न थी। हाँ, क्षेत्रफल बहुत विस्तृत था। बहुत भूमि ऊसर और उजाड़ थी। बसा हुआ भाग भी पहाड़ी और बजर था। ज़मीन बहुत सस्ती उठती थी।

लाला साईंदास ने तुरन्त अलगनी से रेशमी सूट उतार कर पहन लिया और मेज़ पर आकर इस शान से बैठ गये, मानो राजा-रानियों का यहाँ आना कोई साधारण बात नहीं। दफ्तर के क्लर्क भी सँभल गये। सारे बैंक मे सन्नाटे की हलचल पैदा हो गई। दरबान ने पगड़ी सँभाली। चौकीदार ने तलवार निकाली, और अपने स्थान पर खड़ा हो गया। पखा-कुली की मीठी नीद भी टूटी और बगाली बाबू महारानी के स्वागत के लिए दफ्तर से बाहर निकले।

साईंदास ने बाहरी ठाट तो बना लिया ; किन्तु चित्त आशा और भय से चचल हो रहा था। एक रानी से व्यवहार करने का यह पहला ही अवसर था, घबराते थे, कि बात करते बने या न बने। रईसो का मिजाज आसमान पर होता है। मालूम नहीं, मैं बात करने में कहाँ चूक जाऊँ। उन्हे इस समय अपने में एक कमी मालूम हो रही थी। वह राजसी नियमो से अनभिज्ञ थे। उनका सम्मान किस प्रकार करना चाहिये, उनसे बातें करने मे किन बातो का ध्यान रखना चाहिये, उनकी मर्यादा-रक्षा के लिए कितनी नम्रता उचित है, इस प्रकार के प्रश्नों से वह बड़े असमंजस में पडे हुए थे, और जी चाहता था, कि किसी तरह इस परीक्षा से शीघ्र छुटकारा हो जाय। व्यापारियों, मामूली जमीदारो या रईसों से वह रुखाई और सफाई का बर्ताव किया करते थे, और पढ़े-लिखे सज्जनों से शील और शिष्टता का। उन अवसरों पर उन्हे किसी विशेष विचार की आवश्यकता न होती थी ; पर इस समय बड़ी परेशानी हो

रही थी। जैसे कोई लंका-वासी तिब्बत में आ गया हो, जहाँ के रस्म-रवाज और बातचीत का उसे ज्ञान न हो।

एकाएक उनकी दृष्टि घड़ी पर पड़ी। तीसरे पहर के चार बज चुके थे; परन्तु घड़ी अभी दोपहर की नींद मे मग्न थी। तारीख की सूई ने दौड मे समय को भी मात कर दिया था। वह जल्दी से उठे, कि घडी को ठीक कर दें, इतने मे महारानी का कमरे में पदार्पण हुआ। साईदास ने घडी को छोड़ा और महारानी के निकट जा बगल मे खडे हो गये। निश्चय न कर कर सके, कि हाथ मिलावें या झुककर सलाम करें। रानीजी ने स्वय हाथ बढ़ाकर उन्हे इस उलझन से छुड़ाया।

जब लोग कुर्सियो पर बैठ गये, तो रानी के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने व्यवहार की बातचीत शुरू की। बरहल की पुरानी गाथा सुनाने के बाद उसने उन उन्नतियों का वर्णन किया, जो रानी साहब के प्रयत्न से हुई थी। इस समय नहरों की एक शाखा निकालने के लिए दस लाख रुपयो की आवश्यकता थी, परन्तु उन्होंने एक हिन्दुस्तानी बैंक से ही व्यवहार करना अच्छा समझा। अब यह निर्णय नेशनल बैंक के हाथ मे था, कि वह इस अवसर से लाभ उठाना चाहता है, या नहीं?

बगाली बाबू—हम रुपया दे सकता है, मगर कागज-पत्तर देखे बिना कुछ नहीं कर सकता।

सेक्रेटरी—आप कोई जमानत चाहते हैं?

साईदास उदारता से बोले—महाशय, जमानत के लिए आपकी ज़बान ही काफी है।

बगाली बाबू—आपके पास रियासत का कोई हिसाब-किताब है?

लाला साईदास को अपने हेडक्लर्क का दुनियादारी का बर्ताव अच्छा न लगता था। वह इस समय उदारता के नशे मे चूर थे। महारानी की सूरत ही पक्की जमानत थी। उनके सामने काग़ज और हिसाब का वर्णन करना बनियापन जान पड़ता था, जिससे अविश्वास की गध आती है।

महिलाओं के सामने हम शील और सकोच के पुतले बन जाते हैं। साईंदास बगाली बाबू की ओर क्रूर-कठोर दृष्टि से देखकर बोले—कागजों की जॉच कोई आवश्यक बात नहीं है, केवल हमको विश्वास होना चाहिये।

बगाली बाबू—डाइरेक्टर लोग कभी न मानेगा।

साईंदास—हमको इसकी परवाह नहीं, हम अपनी जिम्मेदारी पर रुपए दे सकते है।

रानी ने साईंदास की ओर कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से देखा। उनके होठों पर हल्की मुस्किराहट दिखलाई पड़ी।

(३)

परन्तु डाइरेक्टरो ने हिसाब-किताब, आय व्यय देखना आवश्यक समझा, और यह काम लाला साईंदास के ही सिपुर्द हुआ, क्योंकि और किसी को अपने काम से फुर्सत न थी, कि वह एक पूरे दफ्तर का मुआइना करता। साईंदास ने नियम-पालन किया। तीन-चार दिन तक हिसाब जाँचते रहे, तब अपने इतमीनान के अनुकूल रिपोर्ट लिखी। मामला तय हो गया। दस्तावेज लिखा गया, रुपये दे दिये गये। नौ रुपये सैकडे ब्याज ठहरा।

तीन साल तक बैंक के कारोबार मे अच्छी उन्नति हुई। छठे महीने बिना कहे-सुने पैंतालीस हजार रुपयो की थैली दफ्तर मे आ जाती थी। व्यवहारियो को पॉच रुपये सैकडे ब्याज दे दिया जाता था। हिस्सेदारों को सात रुपए सैकडे लाभ था।

साईंदास से सब लोग प्रसन्न थे। सब लोग उनकी सूझ-बूझ की प्रशसा करते थे। यहाँ तक कि बगाली बाबू भी धीरे-धीरे उनके कायल होते जाते थे। साईंदास उनसे कहा करते—बाबूजी, विश्वास ससार से न कभी लुप्त हुआ है, और न होगा। सत्य पर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। जिस मनुष्य के चित्त से विश्वास जाता रहता है, उसे मृतक समझना चाहिये। उसे जान पड़ता है, मैं चारों ओर

शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ। बड़े-से-बड़े सिद्ध-महात्मा भी इसे रँगे-सियार जान पड़ते हैं। सच्चे-से-सच्चे देश-प्रेमी उसकी दृष्टि में अपनी प्रशंसा के भूखे ही ठहरते हैं। ससार उसे सीधे और छल से परिपूर्ण दिखाई देता है। यहाँ तक कि उसके मन से परमात्मा पर श्रद्धा और भक्ति लुप्त हो जाती है। एक प्रसिद्ध फिलॉस्फर का कथन है, कि प्रत्येक मनुष्य को, जब तक कि उसके विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न पाओ, भल मानस समझो। वर्तमान शासन-प्रथा इसी महत्त्व-पूर्ण सिद्धान्त पर गठित है। और, घृणा तो किसी से करनी ही न चाहिये। हमारी आत्माएँ पवित्र हैं। उनसे घृणा करना परमात्मा से घृणा करने के समान है। यह मैं नहीं कहता, कि ससार में कपट-छल है ही नहीं। है, और बहुत अधि-कता से है, परन्तु उसका निवारण अविश्वास से नहीं, मानव-चरित्र ज्ञान से होता है, और यह एक ईश्वर-दत्त गुण है। मैं यह दावा तो नहीं करता; परन्तु मुझे विश्वास है, कि मैं मनुष्य को देखकर उसके आतरिक भावों तक पहुँच जाता हूँ। कोई कितना ही वेष बदले, रग रूप सँवारे, परन्तु मेरी अन्तर्दृष्टि को धोका नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना चाहिये, कि विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है, और अविश्वास से अविश्वास। यह प्राकृतिक नियम है। जिस मनुष्य को आप शुरू से ही धूर्त्त, कपटी, दुर्जन समझ ले गे, वह कभी आपसे निष्कपट व्यवहार न करेगा। वह एकाएक आपको नीचा दिखाने का यत्न करेगा। इसके विपरीत आप एक चोर पर भी भरोसा करें, तो वह आपका दास हो जायगा। सारे ससार को लूटे, परन्तु आपको धोका न देगा। वह कितना ही कुकर्मी, अधर्मी क्यों न हो, पर आप उसके गले में विश्वास की जजीर डालकर उसे जिस ओर चाहे ले जा सकते हैं। यहाँ तक कि वह आपके हाथों पुण्यात्मा भी बन सकता है।

बगाली बाबू के पास इन दार्शनिक तर्कों का कोई उत्तर न था।

(४)

चौथे वर्ष की पहली तारीख थी। लाला साईंदास बैंक के दफ्तर में बैठे डाकिये की राह देख रहे थे। आज बरहल से पैंतालीस हज़ार रुपये

आवेंगे। अबकी उनका इरादा था, कि कुछ सजावट के सामान और मोल ले लें। अब तक बैंक में टेलीफोन नहीं था। उसका भी तखमीना मँगा लिया था। आशा की आभा चेहरे से झलक रही थी। बंगाली बाबू से हँसकर कहते थे—इस तारीख को मेरे हाथों मे अदबदा के खुजली होने लगती है। आज भी हथेली खुजला रही है। कभी दफ्तरी से कहते—अरे मियाँ शराफत, जरा सगुन तो विचारो, सिर्फ सूद-ही-सूद आ रहा है, या दफ्तरवालों के लिए नजराना-शुकराना भी? आशा का प्रभाव कदाचित् स्थान पर भी होता है। बैंक आज भी खिला हुआ दिखाई पड़ता था।

डाकिया ठीक समय पर आया। साईंदास ने लापरवाही से उसकी ओर देखा। उसने अपनी थैली से कई रजिस्टरी लिफाफे निकाले। साईं-दास ने उन लिफाफों को उड़ती निगाह से देखा। बरहल का कोई लिफाफा न था; न बीमा, न मुहर, न वह लिखावट। कुछ निराशा-सी हुई। जी में आया, डाकिये से पूछें, कोई और रजिस्टरी रह तो नहीं गई? पर रुक गये। दफ्तर के क्लर्कों के सामने इतना अधैर्य अनुचित था; किन्तु जब डाकिया चलने लगा, तब उनसे न रहा गया। पूछ ही बैठे—अरे भाई कोई बीमा-लिफाफा रह तो नहीं गया? आज उसे आना चाहिये था। डाकिए ने कहा—सरकार, भला ऐसी बात हो सकती है! और कहीं भूल-चूक चाहे हो भी जाय; पर आपके काम मे कहीं भूल हो सकती है।

साईंदास का चेहरा उतर गया, जैसे कच्चे रंग पर पानी पड़ जाय। डाकिया चला गया, तो बंगाली बाबू से बोले—यह देर क्यों हुई? और तो कभी ऐसा न होता था!

बंगाली बाबू ने निष्ठुर भाव से उत्तर दिया—किसी कारण से देरी हो गया होगा। घबराने का कोई बात नहीं।

निराशा असंभव को सम्भव बना देती है। साईंदास को इस समय यह ख्याल हुआ, कि कदाचित् पारसल से रुपये आते हों। हो सकता है, तीन हजार अशर्फियों का पारसल करा दिया हो; यद्यपि इस विचार

को औरों पर प्रकट करने का उन्हें साहस न हुआ ; पर उन्हे यह आशा उस समय तक बनी रही, जब तक पार्सलवाला डाकिया वापस नहीं गया। अन्त में सध्या को वह बेचैनी की दशा में उठकर घर चले गये। अब खत या तार का इन्तजार था। दो-तीन बार झुँझलाकर उठे, डाट कर पत्र लिखूँ और साफ-साफ कह दूँ कि लेन-देन के मामले मे वादा पूरा न करना विश्वासघात है। एक दिन की देर भी बैंक के लिए घातक हो सकती है। इससे यह होगा, कि फिर कभी ऐसी शिकायत करने का अवसर न मिलेगा ; परन्तु फिर कुछ सोचकर न लिखा।

शाम हो गई थी, कई मित्र आ गये। गपशप होने लगी। इतने मे पोस्टमैन ने शाम की डाक दी। यों वह पहले अखबारों को खोला करते ; पर आज चिट्ठियाँ खोलीं ; किन्तु बरहल का कोई खत न था। तब बेमन हो एक अँगरेजी अखबार खोला। पहले ही तार का शीर्षक देखकर उनका खून सर्द हो गया। लिखा था—

'कल शाम को बरहल की महारानी जी का तीन दिन की बीमारी के बाद देहान्त हो गया !'

इसके आगे एक संक्षिप्त नोट मे यह लिखा हुआ था—बरहल की महारानी की अकाल मृत्यु केवल इस रियासत के लिए ही नहीं, किंतु समस्त प्रान्त के लिए एक शोक-जनक घटना है। बडे-बडे भिषगाचार्य (वैद्यराज) अभी रोग की परख भी न कर पाये थे कि मृत्यु ने काम तमाम कर दिया। रानी जी को सदैव अपनी रियासत की उन्नति का ध्यान रहता था। उनके थोडे-से राज्य-काल मे ही उनसे रियासत को जो लाभ हुए है, वे चिरकाल तक स्मरण रहेगे। यद्यपि यह मानी हुई बात थी, कि राज्य उनके बाद दूसरे के हाथ मे जायगा, तथापि यह विचार कभी रानी साहब के कर्तव्य-पालन का बाधक नहीं बना। शास्त्रानुसार उन्हे रियासत की जमानत पर ऋण लेने का अधिकार न था, परन्तु प्रजा की भलाई के विचार से उन्हे कई बार इस नियम का उल्लघन करना पड़ा। हमे विश्वास है, कि यदि वह कुछ दिन और जीवित रहतीं, तो रियासत को ऋण से मुक्त कर देतीं। उन्हे रात-दिन इसका ध्यान रहता था।

परन्तु इस असामयिक मृत्यु ने अब यह फैसला दूसरों के अधीन कर दिया। देखना चाहिये, इन ऋणों का क्या परिणाम होता है। हमे विश्वस्त रीति से मालूम हुआ है, कि नये महाराज ने, जो आजकल लखनऊ मे विराजमान है, अपने वकीलो की सम्मति के अनुसार मृतक महारानी के ऋण-सम्बन्धी हिसाबों के चुकाने से इनकार कर दिया है। हमे भय है कि इस निश्चय से महाजनी टोले मे बड़ी हलचल पैदा होगी, और लखनऊ के कितने ही धन-सम्पत्ति के स्वामियों को यह शिक्षा मिल जायगी, कि व्याज का लोभ कितना अनिष्टकारी होता है।'

लाला साईदास ने अखबार मेज पर रख दिया, और आकाश की ओर देखा, जो निराशों का अन्तिम आश्रय है। अन्य मित्रों ने भी यह समाचार पढा। इस प्रश्न पर वाद-विवाद होने लगा। साईदास पर चारों ओर से बौछार पड़ने लगी। सारा दोष उन्हीं के सिर मढ़ा गया, और उनकी चिरकाल की कार्य-कुशलता और परिणाम-दर्शिता मिट्टी में मिल गई। बैंक इतना बडा घाटा सहने मे असमर्थ था। अब यह विचार उपस्थित हुआ, कि कैसे उसके प्राणों की रक्षा की जाय।

(५)

शहर में यह खबर फैलते ही लोग अपने रुपए वापस लेने के लिए आतुर हो गये। सुबह से शाम तक लेनदारों का ताँता लगा रहता था। जिन लोगो का धन चलतू हिसाब मे जमा था, उन्होंने तुरन्त निकाल लिया, कोई उज्र न सुना। यह उसी पत्र के लेख का फल था, कि नेशनल-बैंक की साख उठ गई। धीरज से काम लेते, तो बैंक सँभल जाता, परन्तु आँधी और तूफान मे कौन नौका स्थिर रह सकती है? अत में खजाची ने टाट उलट दिया। बैंक की नसों से इतनी रक्त-धाराएँ निकली, कि वह प्राण-रहित हो गया।

तीन दिन बीत चुके थे। बैंक के घर के सामने सहस्रों आदमी एकत्र थे। बैंक के द्वार पर सशस्त्र सिपाहियो का पहरा था। नाना प्रकार की अफवाहे उड रही थी। कभी खबर उड़ती, लाला साईदास ने विष-पान

कर लिया। कोई उसके पकड़े जाने की सूचना लाता था। कोई कहता था—डाइरेक्टर हवालात के भीतर हो गये।

एकाएक सड़क पर से एक मोटर निकली, और बैंक के सामने आकर रुक गई। किसी ने कहा—बरहल के महाराज की मोटर है। इतना सुनते ही सैकड़ों मनुष्य मोटर की ओर घबराये हुए दौड़े, और उन लोगों ने मोटर को घेर लिया।

कुँअर जगदीशसिंह महारानी की मृत्यु के बाद वकीलो से सलाह लेने लखनऊ आये थे। बहुत कुछ सामान भी खरीदना था। वे इच्छाएँ, जो चिरकाल से ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा मे थीं, बँधे पानी की भाँति राह पाकर उबली पड़ती थीं। यह मोटर आज ही ली गई थी। नगर में एक कोठी लेने की बातचीत हो रही थी। बहुमूल्य विलास वस्तुओं से लदी एक गाड़ी बरहल के लिए चल चुकी थी। यहाँ भीड देखी, तो सोचा, कोई नवीन नाटक होनेवाला है, मोटर रोक दी। इतने मे सैकड़ों आदमियो की भीड़ लग गई।

कुँअर साहब ने पूछा—यहाँ आप लोग क्यो जमा हैं? कोई तमाशा होनेवाला है क्या?

एक महाशय, जो देखने में कोई बिगडे रईस मालूम होते थे, बोले—जी हाँ, बड़ा मजेदार तमाशा है।

कुँअर—किसका तमाशा है?

वह—तक़दीर का।

कुँअर महाशय को यह उत्तर पाकर आश्चर्य तो हुआ, परन्तु सुनते आये थे, कि लखनऊवाले बात-बात में बात निकाला करते है; अतः उसी ढग से उत्तर देना आवश्यक हुआ। बोले—तक़दीर का खेल देखने के लिए यहाँ आना तो आवश्यक नहीं।

लखनवी महाशय ने कहा—आपका कहना सच है, लेकिन दूसरी जगह यह मजा कहाँ? यहाँ सुबह से शाम तक के बीच मे भाग्य ने कितनों को धनी से निर्धन और निर्धन से भिखारी बना दिया। सवेरे जो लोग महलों में बैठे थे, उन्हे इस समय वृक्ष की छाया भी नसीब नहीं।

जिनके द्वार पर सदावर्त खुले थे, उन्हे इस समय रोटियों के लाले पडे हैं। अभी एक सप्ताह पहले जो लोग काल-गति, भाग्य के खेल और समय के फेर को कवियों की उपमा समझते थे, इस समय उनकी आह और करुण-क्रन्दन वियोगियों को भी लज्जित करता है। ऐसे तमाशे और कहाँ देखने में आवेंगे ?

कुँअर—जनाब, आपने तो पहेली को और गूढ कर दिया। देहाती हूँ, मुझसे साधारण तौर से बात कीजिए।

इस पर एक सज्जन ने कहा—साहब, यह नेशनल बैंक है। इसका दिवाला निकल गया है। आदाब-अर्ज, मुझे पहचाना ?

कुँअर साहब ने उसकी ओर देखा, तो मोटर से कूद पडे, और उससे हाथ मिलाते हुए बोले—अरे मिस्टर नसीम ? तुम यहाँ कहाँ ? भाई, तुमसे मिलकर बडा आनन्द हुआ।

मिस्टर नसीम कुँअर साहब के साथ देहरादून-कॉलेज में पढते थे। दोनो साथ-साथ देहरादून की पहाडियों पर सैर करने जाया करते थे ; परन्तु जब से कुँअर महाशय ने घर के झंझटो से विवश होकर कॉलेज छोडा, तब से दोनों मित्रों से भेट न हुई थी। नसीम भी उनके आने के कुछ समय पीछे अपने घर लखनऊ चले आये थे।

नसीम ने उत्तर दिया—शुक्र है, आपने पहचाना तो। कहिये, अब तो पौ-बारह हैं। कुछ दोस्तो की भी सुध है ?

कुँअर—सच कहता हूँ, तुम्हारी याद हमेशा आया करती थी। कहो, आराम से तो हो ? मैं रायल होटल मे टिका हूँ, आज आओ, तो इतमीनान से बातचीत हो।

नसीम—जनाब, इतमीनान तो नेशनल-बैंक के साथ चला गया। अब तो रोजी की फिक्र सवार है। जो कुछ जमा-पूँजी थी, सब आपकी भेंट हुई। इस दिवाले ने फकीर बना दिया। अब आपके दरवाजे पर आकर धरना दूँगा।

कुँअर—तुम्हारा घर है। बेखटके आओ। मेरे साथ ही क्यो न चलो। क्या बतलाऊँ, मुझे कुछ भी ध्यान न था, कि मेरे इनकार करने

का यह फल होगा। जान पड़ता है, बैंक ने बहुतेरों को तबाह कर दिया।

नसीम—घर-घर मातम छाया हुआ है। मेरे पास तो इन कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं रहा।

इतने में एक तिलकधारी पंडितजी आ गये, और बोले—साहब आपके शरीर पर वस्त्र तो है, यहाँ तो धरती-आकाश कहीं ठिकाना नहीं है। मैं राघोजी पाठशाला का अध्यापक हूँ। पाठशाला का सब धन इसी बैंक में जमा था। पचास विद्यार्थी इसी के आसरे संस्कृत पढते और भोजन पाते थे। कल से पाठशाला बन्द हो जायगी। दूर-दूर के विद्यार्थी है। वह अपने घर किस तरह पहुँचेंगे, ईश्वर ही जाने।

एक महाशय, जिनके सिर पर पंजाबी ढंग की पगड़ी थी, गाढ़े का कोट और चमरौधा जूता पहने हुए थे, आगे बढ आये और नेतृत्व के भाव से बोले—महाशय, इस बैंक के फेलियर ने कितने ही इस्टीट्यूशनों को समाप्त कर दिया। लाला दीनानाथ का अनाथालय अब एक दिन भी नहीं चल सकता। उसके एक लाख रुपये डूब गये। अभी पन्द्रह दिन हुए मैं डेपुटेशन से लौटा, तो पन्द्रह हजार रुपये अनाथालय-कोष में जमा किये थे; मगर अब कहीं कौड़ी का ठिकाना नहीं।

एक बूढ़े ने कहा—साहब, मेरी तो जिन्दगी-भर की कमाई मिट्टी में मिल गई। अब कफन का भी भरोसा नहीं।

धीरे-धीरे और लोग भी एकत्र हो गये, और साधारण बातचीत होने लगी। प्रत्येक मनुष्य अपने पासवाले को अपनी दुःख-कथा सुनाने लगा। कुँअर साहब आधे घंटे तक नसीम के साथ खड़े ये विपद-कथाएँ सुनते रहे। ज्यों ही मोटर पर बैठे और होटल की ओर चलने की आज्ञा दी, त्यों ही उनकी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी, जो पृथ्वी पर सिर झुकाये बैठा था। यह एक अहीर था, लड़कपन में कुँअर साहब के साथ खेला था। उस समय उनमें ऊँच-नीच का विचार न था, साथ कबड्डी खेले, साथ पेड़ों पर चढ़े और चिड़ियों के बच्चे चुराये थे। जब कुँअरजी देहरा-दून पढने गये, तब यह अहीर का लड़का शिवदास अपने बाप के साथ लखनऊ चला आया। उसने यहाँ एक दूध की दूकान खोल ली थी।

कुँअर साहब ने उसे पहचाना और उच्च स्वर से पुकारा—अरे शिवदास, इधर देखो।

शिवदास ने बोली सुनी, परन्तु सिर ऊपर न उठाया। वह अपने स्थान पर बैठा ही कुँअर साहब को देख रहा था। बचपन के वे दिन याद आ रहे थे, जब वह जगदीश के साथ गुल्ली डण्डा खेलता था, जब दोनो बुड्ढे गफूर मियाँ का मुँह चिढाकर घर में छिप जाते थे, जब वह इशारों से जगदीश को गुरुजी के पास से बुला लेता था, और दोनो रामलीला देखने चले जाते थे। उसे विश्वास था, कि कुँअरजी मुझे भूल गये होगे, वे लड़कपन की बातें अब कहाँ? कहाँ मैं और कहाँ यह! लेकिन जब कुँअर साहब ने उसका नाम लेकर बुलाया, तो उसने प्रसन्न होकर मिलने के बदले उसने और भी सिर नीचा कर लिया, और वहाँ से टल जाना चाहा। कुँअर साहब की सहृदयता में अब वह साम्य-भाव न था, मगर कुँअर साहब उसे हटते देखकर मोटर से उतरे, और उसका हाथ पकड़कर बोले—अरे शिवदास, क्या मुझे भूल गये?

अब शिवदास अपने मनोवेग को रोक न सका। उसके नेत्र डबडबा आये। कुँअर के गले से लिपट गया, और बोला—भूला तो नहीं, पर आपके सामने आते लज्जा आती है।

कुअर—यहाँ दूध की दूकान करते हो क्या? मुझे मालूम ही न था, नहीं तो अठवारो से पानी पीते-पीते जुकाम क्यो होता? आओ, इस मोटर पर बैठ जाओ। मेरे साथ होटल तक चलो। तुमसे बातें करने को जी चाहता है। तुम्हे बरहल ले चलूँगा, और एक बार फिर गुल्ली-डण्डे का खेल खेलेंगे।

शिवदास—ऐसा न कीजिए, नहीं तो देखने वाले हँसेंगे। मैं होटल मे आ जाऊँगा। वही हजरतगजवाले होटल में ठहरे हैं न?

कुँअर—अवश्य आओगे न?

शिवदास—आप बुलावेंगे, और मैं न आऊँगा?

कुँअर—यहाँ कैसे बैठे हो? दूकान तो चल रही है न?

शिवदास—आज सवेरे तक तो चलती थी। आगे का हाल नहीं मालूम।

कुँअर—तुम्हारे रुपये भी बैंक में जमा थे क्या ?

शिवदास—जब आऊँगा, तो बताऊँगा।

कुँअर साहब मोटर पर आ बैठे, और ड्राइवर से बोले—होटल की ओर चलो।

ड्राइवर—हुजूर ने ह्वाइटवे-कम्पनी की दूकान पर चलने की आज्ञा जो दी थी।

कुँअर—अब उधर न जाऊँगा।

ड्राइवर—जेकब साहब बारिस्टर के यहाँ भी न चलूँ ?

कुँअर—(झुँझलाकर) नहीं, कहीं मत चलो। मुझे सीधे होटल पहुँचाओ।

निराशा और विपत्ति के इन दृश्यों ने जगदीशसिंह के चित्त मे यह प्रश्न उपस्थित कर दिया था, कि अब मेरा क्या कर्तव्य है ?

(६)

आज से सात वर्ष पूर्व, जब बरहल के महाराज ठीक युवावस्था मे घोड़े से गिरकर मर गये थे, विरासत का प्रश्न उठा, तो महाराजा के कोई संतान न होने के कारण, वंशक्रम मिलाने से उसके सगे चचेरे भाई ठाकुर रामसिंह को विरासत का हक पहुँचता था। उन्होंने दावा किया, लेकिन न्यायालयो ने रानी को ही हकदार ठहराया। ठाकुर साहब ने अपीलें कीं, प्रिवी कौंसिल तक गये; परन्तु सफलता न हुई। मुकदमेबाजी में लाखो रुपए नष्ट हुए; अपने पास की मिलकियत भी हाथ से जाती रही; किन्तु हारकर भी वह चैन से न बैठे। सदैव विधवा रानी को छेड़ते रहे। कभी असामियो को भड़काते, कभी असामियो से रानी की बुराई कराते, कभी उन्हे जाली मुकदमो मे फँसाने का उपाय करते, परन्तु रानी भी बड़े जीवट की स्त्री थी। वह भी ठाकुर साहब के प्रत्येक आघात का मुँहतोड़ उत्तर देती। हाँ, इस खींच-तान मे उन्हे बड़ी-बड़ी रकमे अवश्य खर्च करनी पड़ती थीं। असामियों से रुपये न वसूल होते, इसलिए उन्हे बार-बार ऋण लेना पड़ता था, परन्तु कानून के अनुसार उन्हे ऋण लेने का अधिकार न था, इसलिए उन्हे या तो

इस व्यवस्था को छिपाना पड़ता था, या सूद की गहरी दर स्वीकार करनी पड़ती थी।

कुँअर जगदीशसिंह का लडकपन तो लाड़-प्यार से बीता था ; परंतु जब ठाकुर रामसिंह मुकदमेबाजी से बहुत तग आ गये और यह सदेह होने लगा, कि कहीं रानी की चालों से कुँअर साहब का जीवन सकट में न पड जाय, तो उन्होंने विवश हो कुँअर साहब को देहरादून भेज दिया। कुँअर साहब वहाँ दो वर्ष तक तो आनन्द से रहे ; किन्तु ज्योंही कॉलेज की प्रथम श्रेणी में पहुँचे, कि पिता परलोकवासी हो गये। कुँअर साहब को पढ़ाई छोडनी पडी। बरहल चले आये। सिर पर कुटुम्ब-पालन और रानी से पुरानी शत्रुता के निभाने का बोझ आ पडा। उस समय से महारानी के मृत्यु-काल तक उनकी दशा बहुत गिरी रही। ऋण या स्त्रियों के गहनो के सिवा और कोई आधार न था। उस पर कुल-मर्यादा की रक्षा की चिन्ता भी थी। ये तीन वर्ष उनके लिए कठिन परीक्षा के समय थे। आए-दिन साहूकारों से काम पड़ता था। उनके निर्दय बाणों से कलेजा छिद गया था। हाकिमों के कठोर व्यवहार और अत्याचार भी सहने पडते, परन्तु सबसे हृदय-विदारक अपने आत्मीयजनों का बर्ताव था ; जो सामने घात न करके बगली चोटें करते थे, मित्रता और ऐक्य की आड में कपट का हाथ चलाते थे। इन कठोर यातनाओं ने कुँअर साहब को अधिकार, स्वेच्छाचार और धन-सम्पत्ति का जानी-दुश्मन बना दिया था। वह बडे भावुक पुरुष थे। सम्बन्धियों की अकृपा और देश-बन्धुओं की दुर्नीति उनके हृदय पर काला चिह्न बनाती जाती थी ; साहित्य-प्रेम ने उन्हे मानव-प्रकृति का तत्त्वान्वेषी बना दिया था और जहाँ यह ज्ञान उन्हे प्रतिदिन सभ्यता से दूर लिये जाता था, वहाँ उनके चित्त मे जन सत्ता और साम्यवाद के विचार पुष्ट करता जाता था। उन पर प्रकट हो गया था, कि यदि सद्व्यवहार जीवित है, तो वह झोपड़ों और गरीबी में ही। उस कठिन समय में, जब चारो ओर अन्धेरा छाया हुआ था, उन्हे कभी-कभी सच्ची सहानुभूति का प्रकाश यहीं दृष्टिगोचर हो जाता था। धन-सम्पत्ति को वह श्रेष्ठ प्रसाद नहीं, ईश्वर का प्रकोप समझते थे, जो मनुष्य

के हृदय से दया और प्रेम के भावों को मिटा देता है ; यह वह मेघ है, जो चित्त के प्रकाशित तारो पर छा जाता है।

परन्तु महारानी की मृत्यु के बाद ज्यों ही धन-सम्पत्ति ने उन पर वार किया, बस, दार्शनिक तर्कों की यह ढाल चूर-चूर हो गई। आत्मनिदर्शन की शक्ति नष्ट हो गई। वे मित्र बन गये, जो शत्रु-सरीखे थे, और जो सच्चे हितैषी थे, वे विस्मृत हो गये। साम्यवाद के मनोगत विचारो मे घोर परिवर्तन आरम्भ हो गया। हृदय मे असहिष्णुता का उद्भव हुआ। त्याग ने भोग की ओर सिर झुका दिया ; मर्यादा की बेडी गले में पड़ी। वे अधिकारी, जिन्हे देखकर उनके तेवर बदल जाते थे, अब उनके सलाहकार बन गये। दीनता और दरिद्रता को, जिनसे उन्हे सच्ची सहानुभूति थी, देखकर अब वह आँखें मूँद लेते थे।

इसमें सन्देह नहीं, कि कुँअर साहब अब भी साम्यवाद के भक्त थे ; किन्तु उन विचारों के प्रकट करने में वह पहले की-सी स्वतन्त्रता न थी। विचार अब व्यवहार से डरता था। उन्हे कथन को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर प्राप्त था ; पर अब कार्य-क्षेत्र कठिनाइयो से घिरा हुआ जान पड़ता था। बेगार के वह जानी दुश्मन थे, परन्तु अब बेगार को बद करना दुष्कर प्रतीत होता था। स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा के वह भक्त थे ; किन्तु अब धन-व्यय का ध्यान न करके भी उन्हे ग्राम-वासियो की ही ओर से विरोध की शका होती थी। असामियों से पोत उगाहने में कठोर बर्ताव को वह पाप समझते थे ; मगर अब कठोरता के विना काम चलता न जान पड़ता था। साराश यह, कि कितने ही सिद्धान्त, जिन पर पहले उनकी श्रद्धा थी, अब असगत प्रतीत होते थे।

परन्तु आज जो दुःखजनक दृश्य बैंक के हाते में नजर आये, उन्होंने उनके दया-भाव को जाग्रत कर दिया। उस मनुष्य की-सी दशा हो गई, जो नौका मे बैठा सुरम्य तट की शोभा का आनन्द उठाता हुआ किसी श्मशान के सामने आ जाय, चिता पर लाशें जलती देखे, शोक-सन्तप्तो के करुण-क्रन्दन को सुने और नाव से उतरकर उनके दुःख में सम्मिलित हो जाय।

रात के दस बज गये थे। कुँअर साहब पलग पर लेटे थे। बैंक के हाते का दृश्य आँखों के सामने नाच रहा था। वही विलाप-ध्वनि कानों में आ रही थी। चित्त में प्रश्न हो रहा था, क्या इस विडम्बना का कारण मैं ही हूँ? मैंने तो वही किया, जिसका मुझे कानूनन् अधिकार था। यह बैंक के सचालकों की भूल है, जो उन्होंने बिना पूरी जमानत के इतनी बड़ी रकम कर्ज दे दी। लेनदारों को उन्हीं की गरदन नापनी चाहिये। मैं कोई खुदाई फौजदार नहीं हूँ कि दूसरों की नादानी का फल भोगूँ। फिर विचार पलटे, मैं नाहक इस होटल मे टहरा। चालिस रुपए प्रति-दिन देने पड़ेंगे। कोई चार सौ रुपए के मत्थे जायगी। इतना सामान भी व्यर्थ ही लिया। क्या आवश्यकता थी? मखमली गद्दे की कुर्सियों या शीशे के सामानों की सजावट से मेरा गौरव नहीं बढ सकता। कोई साधारण मकान पाँच रुपए किराये पर ले लेता, तो क्या काम न चलता? मैं और साथ के सब आदमी आराम से रहते। यही न होता, कि लोग निदा करते। इसकी क्या चिता। जिन लोगों के मत्थे यह ठाठ कर रहा हूँ, वे गरीब तो रोटियो को तरसते हैं। ये ही दस-बारह हजार रुपए लगाकर कुएँ बनवा देता, तो सहस्रों दीनो का भला होता। अब फिर लोगो के चक्कमें में न जाऊँगा। यह मोटरकार व्यर्थ है। मेरा समय इतना मँहगा नही है, कि घटे-आध घटे की किफायत के लिए दो सौ रुपये महीने का खर्च बढा लूँ। फाका करनेवाले असामियों के सामने मोटर दौड़ाना उनकी छातियो पर मूँग दलना है। माना कि वे रोब में आ जायँगे, जिधर से निकल जाऊँगा, सैकड़ो स्त्रियाँ और बच्चे देखने के लिए खडे हो जायँगे, मगर केवल इतने ही दिखावे के लिए इतना खर्च बढाना मूर्खता है। यदि दूसरे रईस ऐसा करते है, तो करें, मैं उनकी बराबरी क्यों करूँ? अब तक दो हजार रुपए सालाने मे मेरा निर्वाह हो जाता था। अब दो के बदले चार हजार बहुत है। फिर मुझे दूसरो की कमाई इस प्रकार उड़ाने का अधिकार ही क्या है? मैं कोई उद्योग-धधा, कोई कारोबार नहीं करता, जिसका यह नफा हो। यदि मेरे पुरुषो ने हठधर्मी और जबरदस्ती से इलाका अपने हाथों मे रख लिया, तो मुझे उनके

लूट के धन मे शरीक होने का क्या अधिकार है ? जो लोग परिश्रम करते हैं, उन्हे अपने परिश्रम का पूरा फल मिलना चाहिये। राज्य उन्हे केवल दूसरों के कठोर हाथों से बचाता है, उसे इस सेवा का उचित मुआवजा मिलना चाहिये। बस, मैं तो राज्य की ओर से यह मुआवजा वसूल करने के लिए नियत हूँ। इसके सिवा इन गरीबो की कमाई मे मेरा और कोई भाग नहीं। ये बेचारे दीन है, मूर्ख हैं, बेजबान है। इस समय हम इन्हे चाहे जितना सता लें। इन्हे अपने स्वत्व का ज्ञान नहीं। ये अपने महत्त्व को नहीं समझते ; पर एक समय ऐसा अवश्य आवेगा, जब इनके मुँह मे भी जबान होगी, इन्हे भी अपने अधिकारो का ज्ञान होगा। तब हमारी दशा बुरी होगी। ये भोग-विलास मुझे अपने असामियों से दूर किये देते हैं। मेरी भलाई इसी मे है, कि इन्ही मे रहूँ, इन्ही की भाँति जीवन निर्वाह और इनकी सहायता करूँ। हाँ, तो इस बैंक के बारे मे क्या करूँ ? कोई छोटी मोटी रकम होती, तो कहता, लाओ, जिस तरह सिर पर बहुत से भार हैं, उसी तरह यह भी सही। मूल के अलावा कई हजार रुपए सूद के अलग हुए। फिर महाजनों के भी तो तीन लाख रुपए हैं। रियासत की आमदनी डेढ-दो लाख रुपए सालाना है, अधिक नहीं। मैं इतना बडा साहस करूँ भी, तो किस बिरते पर, हाँ यदि वैरागी हो जाऊँ, तो सभव है, मेरे जीवन मे—यदि कहीं अचानक मृत्यु न हो जाय तो—यह झगडा पाक हो जाय। इस अग्नि मे कूदना अपने सपूर्ण जीवन, अपनी उमगों और अपनी आशाओं को भस्म करना है। आह! इस दिन की प्रतीक्षा मे मैंने क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे! पिताजी ने इसी चिन्ता मे प्राण-त्याग किया। यह शुभ मुहुर्त्त हमारी अँधेरी रात के लिए दूर का दीपक था। हम इसी के आसरे जीवित थे। सोते-जागते सदैव इसी की चर्चा रहती थी। इसमे चित्त को कितना सतोष और कितना अभिमान था। भूखे रहने के दिन भी हमारे तेवर मैले न होते थे। जब इतने धैर्य और सतोष के बाद अच्छे दिन आये, तो उससे कैसे विमुख हुआ जाय ? और फिर अपनी ही चिता तो नहीं, रियासत की उन्नति की कितनी ही स्कीमे सोच चुका हूँ। क्या अपनी इच्छाओं के

साथ उन विचारों को भी त्याग दूँ ? इस अभागी रानी ने मुझे बुरी तरह फँसाया। जब तक जीती रही, कभी चैन से न बैठने दिया। मरी तो मेरे सिर पर यह बला डाल दी; परंतु मैं दरिद्रता से इतना डरता क्यों हूँ ? दरिद्रता कोई पाप नहीं है। यदि मेरा त्याग हज़ारों घरानों को कष्ट और दुरवस्था से बचाये, तो मुझे उससे मुँह न मोड़ना चाहिये। केवल सुख से जीवन व्यतीत करना ही हमारा ध्येय नहीं है ? हमारी मान-प्रतिष्ठा और कीर्ति सुख-भोग ही से तो नहीं हुआ करती। राज-मन्दिरों में रहने वाले और विलास में रत राणा प्रताप को कौन जानता है ? यह उनका आत्म-समर्पण और कठिन व्रत-पालन ही है, जिसने उन्हे हमारी जाति का सूर्य बना दिया है। श्रीरामचन्द्र ने यदि अपना जीवन सुख-भोग में बिताया होता, तो आज हम उनका नाम भी न जानते। उनके आत्म-बलिदान ने ही उन्हे अमर बना दिया। हमारी प्रतिष्ठा धन और विलास पर अवलम्बित नही है। मैं मोटर पर सवार हुआ तो क्या, और टट्टू पर चढ़ा तो क्या, होटल में ठहरा तो क्या, और किसी मामूली घर में ठहरा तो क्या, बहुत होगा, ताल्लुकेदार लोग मेरी हँसी उड़ावेंगे। इसकी परवा नहीं। मैं तो हृदय से चाहता हूँ, कि उन लोगों से अलग—अलग रहूँ। यदि इतनी ही निन्दा से सैकड़ों परिवारों का भला हो जाय, तो मैं मनुष्य नहीं, जो प्रसन्नता से उसे सहन करूँ। यदि अपने घोड़े और फिटन, सैर और शिकार, नौकर-चाकर और स्वार्थ-साधक हित-मित्रों से रहित होकर मैं सहस्रों अमीर-गरीब कुटुम्बो का, विधवाओ और अनाथो का भला कर सकूँ, तो मुझे इसमें कदापि विलम्ब न करना चाहिये। सहस्रों परिवारो के भाग्य इस समय मेरी मुट्ठी में हैं। मेरा सुख-भोग उनके लिए विष और मेरा आत्म-सयम उनके लिए अमृत है। मैं अमृत बन सकता हूँ, तो विष क्यो बनूँ ? और फिर इसे आत्म-त्याग समझना भी मेरी भूल है। यह एक सयोग है, कि मैं आज इस जायदाद का अधिकारी हूँ। मैंने उसे कमाया नही। उसके लिए रक्त नहीं बहाया, पसीना नहीं बहाया। यदि वह जायदाद मुझे न मिली होती, तो मैं सहस्रों दीन-भाइयो की भाँति आज जीविकोपार्जन में लगा रहता। मैं

क्यों न भूल जाऊँ, कि मैं इस राज्य का स्वामी हूँ। ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य की परख होती है। मैंने वर्षों पुस्तकावलोकन किया, वर्षों परोपकार-सिद्धान्तों का अनुयायी रहा। यदि इस समय उन सिद्धान्तों को भूल जाऊँ, और स्वार्थ को मनुष्यता और सदाचार से बढ़ने दूँ, तो वस्तुतः यह मेरी अत्यन्त कायरता और स्वर्थपरता होगी। भला स्वार्थ-साधन की शिक्षा के लिए गीता, मिल, एमर्सन और अरस्तू का शिष्य बनने की क्या आवश्यकता थी? यह पाठ तो मुझे अपने दूसरे भाइयों से यों ही मिल जाता। प्रचलित प्रथा से बढ़कर और कौन गुरु था? साधारण लोगों की भाँति क्या मैं भी स्वार्थ के सामने सिर झुका दूँ? तो फिर विशेषता क्या रही? नहीं, मैं कानशंस (विवेक-बुद्धि) का खून न करूँगा। जहाँ पुण्य कर सकता हूँ, पाप न करूँगा। परमात्मन्, तुम मेरी सहायता करो, तुमने मुझे राजपूत-घर में जन्म दिया है। मेरे कर्म से इस महान् जाति को लज्जित न करो। नहीं, कदापि नहीं। यह गर्दन स्वार्थ के सम्मुख न झुकेगी। मैं राम, भीष्म और प्रताप का वंशज हूँ, शरीर-सेवक न बनूँगा।

कुँअर जगदीशसिंह को इस समय ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वह किसी ऊँचे मीनार पर चढ़ गये हैं। चित्त अभिमान से पूरित हो गया। आँखें प्रकाशमान हो गईं; परन्तु एक ही क्षण में इस उमंग का उतार होने लगा, ऊँचे मीनार से नीचे की ओर आँखें गईं। सारा शरीर काँप उठा। उस मनुष्य की-सी दशा हो गई, जो किसी नदी के तट पर बैठा हुआ उसमें कूदने का विचार कर रहा हो।

उन्होंने सोचा, क्या मेरे घर के लोग मुझसे सहमत होंगे? यदि मेरे कारण वे सहमत भी हो जायँ, तो क्या मुझे अधिकार है, कि अपने साथ उनकी इच्छाओं का भी बलिदान करूँ? और तो और माताजी कभी न मानेंगी, और कदाचित भाई लोग भी अस्वीकार करें। रियासत की हैसियत को देखते हुए वे कम-से-कम दस हजार सालाना के हिस्सेदार हैं और मैं उनके भाग में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मैं केवल अपना मालिक हूँ; परन्तु मैं भी तो अकेला नहीं हूँ। सावित्री

स्वयं चाहे मेरे साथ आग में कूदने को तैयार हो ; किन्तु अपने प्यारे पुत्र को इस आँच के समीप कदापि न आने देगी।

कुँअर महाशय और अधिक न सोच सके। वह एक विकल दशा में पलँग पर से उठ बैठे और कमरे मे टहलने लगे। थोडी देर बाद उन्होंने जँगले से बाहर की ओर झाँका और किवाड खोलकर बाहर चले आये। चारो ओर अँधेरा था। उनकी चिन्ताओ की भाँति सामने अपार और भयकर गोमती नदी बह रही थी। वह धीरे-धीरे नदी के तट पर चले गये और देर तक वहाँ टहलते रहे। आकुल-हृदय को जल-तरगो से प्रेम होता है। शायद इसलिए कि लहरें व्याकुल हैं। उन्होंने अपने चंचल चित्त को फिर एकाग्र किया। यदि रियासत की आमदनी से ये सब वृत्तियाँ दी जायँगी, तो ऋण का सूद निकलना भी कठिन होगा। मूल का तो कहना ही क्या! क्या आय मे वृद्धि नहीं हो सकती? अभी अस्तबल में बीस घोडे है। मेरे लिये एक काफी है। नौकरो की सख्या सौ से कम न होगी। मेरे लिये दो भी अधिक है। यह अनुचित है, कि अपने ही भाइयों से नीच सेवाएँ कराई जायँ। उन मनुष्यो को मै अपने सीर की जमीन दे दूँगा। सुख से खेती करेंगे, और मुझे आशीर्वाद देंगे। बगीचों के फल अब तक डालियो के भेंट हो जाते थे। अब उन्हें बेचूँगा, और सबसे बड़ी आमदनी तो बयाई की है। केवल महेशगज के बाजार से दस हजार रुपए आते हैं। यह सब आमदनी महन्तजी उडा जाते हैं। उनके लिए एक हजार रुपये साल होना चाहिये। अब की इस बाजार का ठेका दूँगा। आठ हजार से कम न मिलेंगे। इन मदो से पचीस हजार रुपए की वार्षिक आय होगी। सावित्री और लल्ला (लडके) के लिए एक हजार रुपया माहवार काफी है। मैं सावित्री से स्पष्ट कह दूँगा, कि या तो एक हजार रुपया मासिक लो और मेरे साथ रहो, या रियासत की आधी आमदनी ले लो, और मुझे छोड दो। रानी बनने की इच्छा हो, तो खुशी से बनो, परन्तु मैं राजा न बनूँगा।

अचानक कुँअर साहब के कानों मे आवाज आई—'राम नाम सत्य है!' उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। कई मनुष्य एक लाश लिये आते थे।

उन लोगो ने नदी-किनारे चिता बनाई और उसमे आग लगा दी। दो स्त्रियाँ चिग्घार कर रो रही थीं। इस विलाप का कुँअर साहब के चित्त पर कुछ प्रभाव न पड़ा। वह चित्त मे लज्जित हो रहे थे, कि मैं कितना पाषाण-हृदय हूँ। एक दीन मनुष्य की लाश जल रही है, स्त्रियाँ रो रही हैं और मेरा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता! पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा हूँ! एकबारगी एक स्त्री ने रोते हुए कहा—'हाय मेरे राजा! तुम्हे विष कैसे मीठा लगा?' यह हृदय-विदारक विलाप सुनते ही कुँअर साहब के चित्त मे एक घाव सा लग गया। करुणा सजग हो गई, और नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गये। कदाचित् इस दुखिया ने विष पान करके प्राण दिये है। हाय! उसे विष कैसे मीठा लगा! इसमें कितनी करुणा है, कितना दुःख, कितना आश्चर्य! विष तो कड़वा पदार्थ है। वह क्यो कर मीठा हो गया! कटु विष के बदले जिसने अपने मधुर प्राण दे दिये, उस पर कोई बड़ी मुसीबत पडी होगी! ऐसी ही दशा में विष मधुर हो सकता है। कुँअर साहब तडप गये। कारुणिक शब्द बार-बार उनके हृदय मे गूँजते थे। अब उनसे वहाँ न खड़ा रहा गया। वह उन आदमियों के पास आये, और एक मनुष्य से पूछा—क्या बहुत दिनो से बीमार थे? इस मनुष्य ने कुँअर साहब की ओर आँसू भरे नेत्रो से देखकर कहा—नही साहब, कहाँ की बीमारी। अभी आज सन्ध्या तक भली-भाँति बातें कर रहे थे। मालूम नहीं, सन्ध्या को क्या खा लिया, कि खून की कै होने लगी। जब तक वैद्यराज के यहाँ ज यँ, तब तक आँखे उलट गई। नाड़ी छूट गई। वैद्यराज ने आकर देखा, तो कहा—अब क्या हो सकता है? अभी कुल बाईस-तेईस वर्ष की अवस्था थी। ऐसा पट्ठा सारे लखनऊ में नहीं था।

कुँअर—कुछ मालूम हुआ, विष क्यो खाया?

उस मनुष्य ने सदेह-दृष्टि से देखकर कहा—महाशय, और तो कोई बात नही हुई। जब से यह बडा बैंक टूटा है, बहुत उदास रहते थे। कई हजार रुपए बैंक में जमा किये थे। घी-दूध-मलाई की बडी दूकान थी। बिरादरी मे मान था। वह सारी पूँजी डूब गई। हम लोग रोकते रहे, कि

बैंक में रुपए मत जमा करो ; किन्तु होनहार यह थी। किसी की नहीं सुनी। आज सवेरे स्त्री से गहने माँगते थे, कि गिरवी रखकर अहीरों को दूध के दाम दे दें। उससे बातों-बातों में झगड़ा हो गया। बस न जाने क्या खा लिया।

कुँअर साहब का हृदय काँप उठा। तुरन्त ध्यान आया—शिवदास तो नहीं है। पूछा—इनका नाम शिवदास तो नहीं था ? उस मनुष्य ने विस्मय से देखकर कहा—हाँ, यही नाम था। क्या आप से जान-पहचान थी ?

कुँअर—हाँ, हम और यह बहुत दिनों तक बरहल में साथ-साथ खेले थे। आज शाम को वह हमसे बैंक में मिले थे। यदि उन्होंने मुझसे तनिक भी चर्चा की होती, तो मैं यथाशक्ति उनकी सहायता करता। शोक !

उस मनुष्य ने अब ध्यान-पूर्वक कुँअर साहब को देखा, और जाकर स्त्रियों से कहा—चुप हो जाओ, बरहल के महाराजा आये हैं ! इतना सुनते ही शिवदास की माता जोर-जोर से सिर पटकती और रोती हुई आकर कुँअर के पैरों पर गिर पड़ी। उसके मुख से केवल ये शब्द निकले—'बेटा, बचपन में जिसे तुम भैया कहा करते थे × × ×' और गला रुँध गया।

कुँअर महाशय की आँखों से भी अश्रुपात हो रहा था। शिवदास की मूर्ति उनके सामने खड़ी यह कहती देख पड़ती थी, कि तुमने मित्र होकर मेरे प्राण लिये !

(७)

भोर हो गया ; परन्तु कुँअर साहब को नींद न आई। जब से वह गोमती तीर से लौटे थे, उनके चित्त पर एक वैराग्य-सा छाया हुआ था। वह कारुणिक दृश्य उनके स्वार्थ के तर्कों को छिन्न-भिन्न किये देता था। सावित्री के विरोध, लल्ला के निराशा-युत हठ, और माता के क्रुद्ध शब्दों का अब उन्हें लेश-मात्र भी भय न था। सावित्री कुढ़ेगी, कुढ़े। लल्ला को भी संग्राम के क्षेत्र में कूदना पड़ेगा, कोई चिन्ता नहीं। माता

प्राण देने पर तत्पर होगी, क्या हर्ज है। मैं अपनी स्त्री-पुत्र तथा हित-मित्रादि के लिए सहस्रों परिवारों की हत्या न करूँगा। हाय! शिवदास को जीवित रखने के लिए मैं ऐसी कितनी रियासतें छोड सकता हूँ। सावित्री को भूखो रहना पड़े, लल्ला को मजदूरी करनी पडे, मुझे द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़े, तब भी दूसरो का गला न दबाऊँगा। अब विलम्ब का अवसर नही। न जाने आगे यह दिवाला और क्या क्या आपत्तियाँ खडी करे। मुझे इतना आगा-पीछा क्यों हो रहा है? यह केवल आत्म-निर्बलता है; वरना यह कोई ऐसा बड़ा काम नही, जो किसी ने न किया हो। आये-दिन लोग लाखों रुपये दान-पुण्य करते हैं। मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है। उससे क्यों मुँह मोड़ूँ? जो कुछ हो, जो चाहे सिर पडे, इसकी क्या चिन्ता? कुँअर ने घंटी बजाई। एक क्षण में अरदली आँखें मलता हुआ आया।

कुँअर साहब बोले—अभी जेकब साहब बारिस्टर के पास जाकर मेरा सलाम दो। जाग गये होंगे। कहना जरूरी काम है। नहीं, यह पत्र लेते जाओ। मोटर तैयार करा लो।

(८)

मिस्टर जेकब ने कुँअर साहब को बहुत समझाया, कि आप इस दलदल में न फँसे, नही तो निकलना कठिन होगा। मालूम नही, अभी कितनी ऐसी रकमें है, जिनका आपको पता नहीं है, परन्तु चित्त मे दृढ हो जानेवाला निश्चय चूने का फर्श है, जिसको आपत्ति के थपेडे और भी पुष्ट कर देते हैं। कुँअर साहब अपने निश्चय पर दृढ रहे। दूसरे दिन समाचार-पत्रों मे छपवा दिया, कि मृत महारानी पर जितना कर्ज है वह हम सकारते हैं, और नियत समय के भीतर चुका देंगे।

इस विज्ञापन के छपते ही लखनऊ में खलबली पड गई। बुद्धिमानो की सम्मति में यह कुँअर महाशय की नितान्त भूल थी, और जो लोग कानून से अनभिज्ञ थे, उन्होंने सोचा, कि इसमे अवश्य कोई भेद है। ऐसे बहुत कम मनुष्य थे, जिन्हे कुँअर साहब की नीयत की सचाई पर विश्वास आया हो; परन्तु कुँअर साहब का बखान चाहे न हुआ हो,

आशीर्वाद की कमी न थी। बैंक के हज़ारो गरीब लेनदार सच्चे हृदय से उन्हे आशीर्वाद दे रहे थे।

एक सप्ताह तक कुँअर साहब को सिर उठाने का अवकाश न मिला। मिस्टर जेकब का विचार सत्य सिद्ध हुआ। देना प्रतिदिन बढ़ता जाता था। कितने ही पुरनोट ऐसे मिले, जिनका उन्हे कुछ भी पता न था। जौहरियो और अन्य बडे-बड़े दूकानदारो का लेना भी कम न था। अंदाजन तेरह चौदह लाख का था। मीजान बीस लाख तक जा पहुँचा। कुँअर साहब घबराये। शका हुई—ऐसा न हो, कि उन्हे भाइयो का गुजारा भी बंद करना पडे, जिसका उन्हे कोई अधिकार नही था। यहाँ तक कि सातवें दिन उन्होंने कई साहूकारो को बुरा भला कहकर सामने से दूर किया। जहाँ ब्याज की दर अधिक थी, उसे कम कराया और जिन रकमों की मीयाद बीत चुकी थी, उनसे इनकार कर दिया।

उन्हे साहूकारो की कठोरता पर क्रोध आता था। उनके विचार मे महाजनो को डूबते धन का एक भाग पाकर ही सन्तोष कर लेना चाहिये था। इतनी खीच-तान करने पर भी कुल देना उन्नीस लाख से कम न हुआ।

कुँअर साहब इन कामों से अवकाश पाकर एक दिन नेशनल-बैंक की ओर जा निकले। बैंक खुला हुआ था। मृतक शरीर मे प्राण आ गये थे। लेनदारो की भीड़ लगी हुई थी। लोग प्रसन्न-चित्त लौटे जा रहे थे। कुँअर साहब को देखते ही सैकडो मनुष्य बडे प्रेम से उनकी ओर दौडे। किसी ने रो कर, किसी ने पैरों पर गिर कर और किसी ने सभ्यता-पूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वह बैक के कार्यकर्ताओं से भी मिले। लोगों ने कहा—इस विज्ञापन ने बैक को जीवित कर दिया। बगाली बाबू ने लाला साईदास की आलोचना की—वह समझता था, ससार मे सब मनुष्य भलमानस है। हमको उपदेश करता था। अब उसका आँख खुल गया है! अकेला घर में बैठा रहता है। किसी को मुँह नहीं दिखाता। हम सुनता है, वह यहाँ से भाग जाना चाहता था; परन्तु बड़ा साहब बोला, भागेगा, तो तुम्हारा ऊपर वारट जारी कर देगा।

अब साईदास की जगह बगाली बाबू मैनेजर हो गये थे।

इसके बाद कुँअर साहब बरहल आये। भाइयो ने यह वृत्तात सुना, तो बिगडे, अदालत की धमकी दी। माताजी को ऐसा धक्का पहुँचा, कि वह उसी दिन बीमार होकर और एक ही सप्ताह मे इस ससार से विदा हो गई। सावित्री को भी चोट लगी ; पर उसने केवल सन्तोष ही नहीं किया, पति की उदारता और त्याग की प्रशसा भी की। रह गये लाल साहब। उन्होंने जब देखा कि अस्तबल से घोडे निकले जाते है, हाथी मकनपुर के मेले में बिकने के लिए भेज दिये गये हैं और कहार बिदा किये जा रहे है, तो व्याकुल हो पिता से बोले—बाबूजी, यह सब नौकर, घोडे, हाथी कहाँ जा रहे है ?

कुँअर—एक राजा साहब के उत्सव मे।

लालजी—कौन से राजा ?

कुँअर—उनका नाम राजा दीनसिंह है।

लालजी—कहाँ रहते है ?

कुँअर—दरिद्रपुर।

लालजी—तो हम भी जायँगे।

कुँअर—तुम्हे भी ले चलेंगे ; परन्तु इस बारात मे पैदल चलने-वालो का सम्मान सवारों से अधिक होगा।

लालजी—तो हम भी पैदल चलेंगे।

कुँअर—वहाँ परिश्रमी मनुष्य की प्रशसा होती है।

लालजी—तो हम सबसे ज्यादा परिश्रम करेंगे।

कुँअर साहब के दोनो भाई पाँच-पाँच हजार रुपए का गुजारा लेकर अलग हो गये। कुँअर साहब अपने और परिवार के लिए कठिनाई से एक हजार सालाना का प्रबन्ध कर सके, पर यह आमदनी एक रईस के लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं थी। अतिथि-अभ्यागत प्रतिदिन टिके ही रहते थे। उन सब का भी सत्कार करना पड़ता था। बड़ी कठिनाई से निर्वाह होता था। इधर एक वर्ष से शिवदास के कुटुम्ब का भार भी सिर पर आ पड़ा ; परन्तु कुँअर साहब कभी अपने निश्चय पर शोक नहीं

करते। उन्हे कभी किसी ने चिंतित नहीं देखा। उनका मुख-मण्डल धैर्य और सच्चे अभिमान से सदैव प्रकाशित रहता है। साहित्य-प्रेम पहले से था। अब बागवानी से प्रेम हो गया है। अपने बाग मे प्रातःकाल से शाम तक पौदों की देख-रेख किया करते है और लाल साहब तो पक्के कृषक होते दिखाई देते है। अभी नव-दस वर्ष से अधिक अवस्था नहीं है ; लेकिन अँधेरे मुँह खेतो में पहुँच जाते हैं। खाने-पीने की भी सुध नही रहती।

उनका घोड़ा मौजूद है ; परन्तु महीनो उस पर नही चढते। उनकी यह धुन देखकर कुँअर साहब प्रसन्न रहते और कहा करते है—रियासत के भविष्य की ओर से निश्चिन्त हूँ। लाल साहब कभी इस पाठ को न भूलेंगे। घर मे सम्पत्ति होती, तो सुख-भोग, शिकार और दुराचार के सिवा और क्या सूझता! सपत्ति बेचकर हमने परिश्रम और सतोष खरीदा, और यह सौदा बुरा नहीं। सावित्री इतनी सतोषी नही। वह कुँअर साहब के रोकने पर भी असामियो से छोटी-मोटी भेट ले लिया करती है और कुल-प्रथा नही तोड़ना चाहती।

आत्माराम

बेदो ग्राम मे महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रातः से सन्ध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे, कि जब किसी कारण से वह बन्द हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गई। वह नित्यप्रति एक बार प्रातः-काल अपने तोते का पिंजड़ा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश मे उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यो ही लोगो के कानो मे आवाज आती—'सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता' लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थी, दर्जनो नाती-पोते थे; लेकिन उसके बोझ को हल्का करनेवाला कोई न था। लड़के कहते—'जब तक दादा जीते है, हम जीवन का आनन्द भोग ले, फिर तो यह ढोल गले पड़ेगा ही।' बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजन के समय उसके घर मे साम्यवाद का ऐसा गगन-भेदी निर्घोष होता, कि वह भूखा ही उठ आता, और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशान्तिकारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरो से कही ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएँ कही ज्यादा कष्ट-साध्य थी, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्य-शून्य प्राणियो के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता था। ज्यो ही यह कलह शान्त होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—'सत्त

गुरदत्त शिवदत्त दाता।' इस मन्त्र के जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती थी।

(२)

एक दिन सयोगवश किसी लड़के ने पिंजडे का द्वार खोल दिया। तोता उड गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजडे की ओर देखा, तो उसका कलेजा सन्न से हो गया। तोता कहाँ गया! उसने फिर पिंजडे को देखा, तोता गायब था। महादेव घबडाकर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौडाने लगा। उसे ससार में कोई वस्तु अगर प्यारी थी, तो वह यही तोता। लड़के-बालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था। लडकों की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था। बेटों से उसे प्रेम न था, इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे; बल्कि इसलिए कि उनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुल्हड़ों की नियमित सख्या से वचित रह जाता था। पडोसियों से उसे चिढ थी; इसलिए कि वे उसकी अँगीठी से आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो वह यही तोता। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था में था, जब मनुष्य को शांति-भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजडा उतार लिया, और उसे दिखाकर कहने लगा—'आ आ, सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' लेकिन गाँव और घर के लडके एकत्र होकर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे। ऊपर से कौओं ने काँव-काँव की रट लगाई। तोता उड़ा और गाँव से बाहर निकलकर एक पेड पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजडा लिये उसके पीछे दौड़ा, सो दौडा। लोगों को उसकी द्रुतगामिता पर अचम्भा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गई थी। किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे। उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढाने में सभी को मजा आता था। किसी ने ककड़ फेंके, किसी ने तालियाँ बजाई; तोता फिर

उड़ा, और वहाँ से दूर आम के बाग में एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजड़ा लिये मेंढक की भाँति उचकता चला। बाग में पहुँचा, तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ, तो फिर पिंजड़ा उठाकर कहने लगा—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' तोता फुनगी से उतर कर नीचे की एक डाल पर आ बैठा; किन्तु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा, डर रहा है। वह पिंजडे को छोड़कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर गौर से देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजडे के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मन्त्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोते के समीप आया, और लपका कि तोते को पकड़ ले, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड पर जा बैठा।

शाम तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजडे पर आ बैठता, कभी पिंजडे के द्वार पर बैठ अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता, और फिर उड जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान् मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। यहाँ तक कि शाम हो गई। माया और मोह का यह संग्राम अन्धकार में विलीन हो गया।

(३)

रात हो गई। चारों ओर निविड़ अन्धकार छा गया। तोता न जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था, कि रात को तोता कहीं उडकर नहीं जा सकता, और न पिंजडे ही में आ सकता है, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था। आज उसने दिन-भर कुछ नहीं खाया। रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की एक बूँद भी उसके कण्ठ में न गई; लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास। तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पडता था। वह दिन रात काम करता था; इसलिए कि यह उसकी अंतःप्रेरणा थी, जीवन के और काम इसलिए करता था, कि आदत थी। इन कामों में उसे अपनी सजीवता का लेश-मात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था,

जो उस चेतना की याद दिलाता था। उसका हाथ से जाना जीव का देह त्याग करना था।

महादेव दिन-भर भूखा-प्यासा, थका-माँदा, रह-रहकर झपकियाँ ले लेता था, किन्तु एक क्षण में फिर चौंककर आँखें खोल देता और उस विस्तृत अन्धकार में उसकी आवाज़ सुनाई देती—'सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता।'

आधी रात गुजर गई थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका। देखा, एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है, और कई आदमी बैठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। वे सब चीलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला—'सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता।' और उन आदमियो की ओर चिलम पीने चला, किन्तु जिस प्रकार बन्दूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते है, उसी प्रकार उसे आते देख सब-के-सब उठकर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो-ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं। वह जोर से चिल्ला उठा—'चोर-चोर, पकडो-पकडो!' चोरों ने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपक के पास गया, तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला। मोरचे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलसे मे हाथ डाला, तो मोहरें थीं। उसने एक मोहर बाहर निकाली, और दीपक के उजाले मे देखा, हाँ, मोहर थी। उसने तुरत कलसा उठा लिया, दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिपकर बैठ रहा। साह से चोर बन गया।

उसे फिर शका हुई, ऐसा न हो, चोर लौट आवें, और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमर में बाँधी, फिर एक सूखी लकडी से जमीन की मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाये, उन्हे मोहरों से भरकर मिट्टी से ढक दिया।

(४)

महादेव के अन्तर्नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत् था, चिंताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने

का भय था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गई, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्रित हो गई। तब तीर्थ-यात्रा करने चले, और वहाँ से लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक बाग़ भी लग गया और वहाँ वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा। साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायँ, तो मैं भागूँगा क्योंकर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया, और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था, उसके पैरों में पर लग गये है। चिन्ता शान्त हो गई। इन्हीं कल्पनाओं मे रात व्यतीत हो गई। उषा का आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियाँ गाने लगी। सहसा महादेव के कानों मे आवाज आई—

'सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन मे चित्त लागा।'

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन मे सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभाव-शून्य। तब उसका हृदय-रूपी वृक्ष पत्र-पल्लव-विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजारित न कर सकती थी, पर अब उस वृक्ष मे कोपलें और शाखाएँ निकल आई थी। इस वायु-प्रवाह से झूम उठा, गुंजित हो गया।

अरुणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश मे डूबी हुई थी। उसी समय तोता पैरों को जोड़े हुए ऊँची डाली से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे, और आकर पिंजड़े में बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा, और पिंजड़े को उठाकर बोला—'आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया; पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया।

अब तुम्हें चाँदी के पिंजडे में रखूँगा और सोने से मढ दूँगा।' उसके रोम-रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु, तुम कितने दयावान् हो! यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नही तो मुझ-जैसा पापी, पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था! इन पवित्र भावों से उसकी आत्मा विह्वल हो गई। वह अनुरक्त होकर कह उठा—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण मे चित्त लागा।'

उसने एक हाथ मे पिंजड़ा लटकाया, बगल में कलसा दबाया और घर चला।

(५)

महादेव घर पहुँचा, तो अभी कुछ अँधेरा था। रास्ते में एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेंट न हुई, और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलसे को एक नाँद मे छिपा दिया, और उसे कोयले से अच्छी तरह ढककर अपनी कोठरी में रख आया। जब दिन निकल आया, तो वह सीधे पुरोहितजी के घर पहुँचा। पुरोहितजी पूजा पर बैठे सोच रहे थे। कल ही मुकदमे की पेशी है और अभी तक हाथ में कौडी भी नहीं—जजमानों मे कोई साँस भी नहीं लेता। इतने मे महादेव ने पालागन की। पण्डितजी ने मुँह फेर लिया। यह अमंगलमूर्ति कहाँ से आ पहुँचो, मालूम नहीं दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट होकर पूछा—क्या है जी, क्या कहते हो? जानते नही, हम इस समय पूजा पर रहते है? महादेव ने कहा—महाराज, आज मेरे यहाँ सत्यनारायण की कथा है।

पुरोहितजी विस्मित हो गये। कानो पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना। पूछा—आज क्या है?

महादेव बोला—कुछ नहीं, ऐसी ही इच्छा हुई, कि आज भगवान् की कथा सुन लूँ।

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। वेदो और अन्य निकटवर्ती गाँवों मे सुपारी फिरी। कथा के उपरात भोज का भी नेवता था। जो सुनता, आश्चर्य करता। आज रेत में दूब कैसे जमी!

सन्ध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पडितजी अपने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर से बोला—भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गई। मैंने न जाने कितने आदमियो को दगा दी, कितना खरे को खोटा किया; पर अब भगवान् ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहते हैं। मैं आप सभी भाइयों से ललकार कर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ निकलता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो, तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिये कल से एक महीने तक जब जी चाहे आवे, और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखी का काम नहीं।

सब लोग सन्नाटे में आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिलाकर बोला—हम कहते न थे। किसी ने अविश्वास से कहा—क्या खाकर भरेगा, हजारों का टोटल हो जायगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की—और जो लोग सुरधाम चले गये?

महादेव ने उत्तर दिया—उनके घरवाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की, कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया? किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्रायः लोगों को याद भी न था, कि उन्हें महादेव से क्या पाना है, और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक होजाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी, कि महादेव की साधुता ने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—तुम्हे याद है, मैंने एक कण्ठा बनाने के लिए सोना दिया था, और तुमने कई माशे तौल मे उड़ा दिये थे।

महादेव—हाँ याद है,-आपका कितना नुकसान हुआ होगा ?

पुरोहित—पचास रुपए से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं, और पुरोहितजी के सामने रख दीं।

पुरोहित की लोलुपता पर टीकाएँ होने लगीं। यह बेइमानी है, बहुत हो, तो दो-चार रुपए का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से पचास रुपये ऐंठ लिये। नाँरायण का भी डर नहीं। बनने को तो पण्डित ,पर नीयत ऐसी खराब ! राम-राम !!

लोगों को महादेव पर एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घंटा बीत गया ; पर उन सहस्रों मनुष्यों मे से एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेव ने फिर कहा—मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं, इसलिए आज कथा होने दीजिये, मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे तीर्थ-यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयो से मेरी विनती है, कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोरो के भय से नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथा-योग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहाँ तक कि महीना पूरा हो गया, और एक आदमी भी हिसाब लेने न आया। अब महादेव को ज्ञात हुआ, कि संसार में कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ, कि संसार बुरो के लिए बुरा है और अच्छो के लिए अच्छा।

(६)

इस घटना को हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं। आप वेदो जाइए, तो दूर ही से एक सुनहला कलस दिखाई देता है। वह ठाकुरद्वारे का कलस है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमे खूब कमल खिले रहते है। उसकी मछलियाँ कोई नही पकड़ता, तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति-चिह्न है, उनके सबन्ध

मे विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कोई कहता है, उसका रत्नजटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता है वह 'सत्त गुरुदत्त' कहता हुआ अन्तर्द्धान हो गया; पर यथार्थ यह है कि उस पक्षी-रूपी चन्द्र को किसी बिल्ली-रूपी राहु ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'

महादेव के विषय में भी कितनी जन-श्रुतियाँ हैं। उनमे सबसे मान्य यह है, कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई सन्यासियों के साथ हिमालय चला गया, और वहाँ से लौटकर न आया। उसका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

दुर्गा का मन्दिर

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़ने मे मग्न थे, और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करने में। श्यामा चिल्लाती, कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नू रोता था, कि श्यामा ने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथ ने क्रुद्ध होकर भामा से कहा—तुम इन दुष्टों को यहाँ से हटाती हो कि नहीं ? नहीं तो मैं एक-एक की खबर लेता हूँ।

भामा चूल्हे में आग जला रही थी, बोली—अरे तो अब क्या सन्ध्या को भी पढ़ते ही रहोगे ? जरा दम तो ले लो।

ब्रज०—उठा तो न जायगा ; बैठी-बैठी वहीं से कानून बघारोगी ! अभी एक-आध को पटक दूँगा, तो वहीं से गरजती हुई आओगी, कि हाय-हाय ! बच्चे को मार डाला !

भामा—तो मैं कुछ बैठी या सोई तो नहीं हूँ। जरा एक घड़ी तुम्हीं लड़कों को बहलाओगे, तो क्या होगा ! कुछ मैंने ही तो उनकी नौकरी नहीं लिखाई।

ब्रजनाथ से कोई जवाब न देते बन पड़ा। क्रोध पानी के समान बहाव का मार्ग न पाकर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि ब्रजनाथ नैतिक सिद्धान्तों के ज्ञाता थे ; पर उनके पालन मे इस समय कुशल न दिखाई दी। मुद्दई और मुद्दालेह, दोनों को एक ही लाठी हाँका, और दोनों को रोते-चिल्लाते छोड़ कानून का ग्रन्थ बगल में दबा कॉलेज-पार्क की राह ली।

(२)

सावन का महीना था। आज कई दिन के बाद बादल हटे थे। हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादरें ओढ़े खड़े थे। मृदु समीर सावन का राग गाता था, और बगले डालियों पर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंच पर जा बैठे और किताब खोली, लेकिन इस ग्रन्थ की अपेक्षा प्रकृति ग्रन्थ

का अवलोकन अधिक चित्ताकर्षक था। कभी आसमान को पढते थे, कभी पत्तियो को, कभी छबिमयी हरियाली को, और कभी सामने मैदान मे खेलते हुए लड़को को।

एकाएक उन्हे सामने घास पर कागज की एक पुडिया दिखाई दी। माया ने जिज्ञासा की—आड मे चलो, देखें इसमे क्या है?

बुद्धि ने कहा—तुमसे मतलब? पडी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रूपी माया की जीत हुई। व्रजनाथ ने उठकर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसी के पैसे पुड़िया मे लिपटे गिर पड़े है। खोलकर देखा, सावरेन थे! गिना, पूरे आठ निकले। कुतूहल की सीमा न रही।

व्रजनाथ की छाती धडकने लगी। आठो सावरेन हाथ मे लिये सोचने लगे—इन्हे क्या करूँ? अगर यहीं रख दूँ, तो न जाने किसकी नजर पडे, न मालूम कौन उठा ले जाय! नहीं, यहाँ रहना उचित नहीं। चलूँ, थाने मे इत्तला कर दूँ, और ये सावरेन थानेदार को सौप दूँ। जिसके होंगे, वह आप ले जायगा या अगर उसको न भी मिलें, तो मुझ पर कोई दोष न रहेगा, मैं तो अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊँगा!

माया नें परदे की आड से मन्त्र मारना शुरू किया। वह थाने नहीं गये, सोचा—चलूँ भामा से एक दिल्लगी करूँ। भोजन तैयार होगा। कल इतमीनान से थाने जाऊँगा।

भामा ने सावरेन देखे, हृदय मे एक गुदगुदी-सी हुई। पूछा—किसकी हैं?

व्रज०—मेरी।

भामा—चलो, कहीं हो न!

व्रज०—पड़ी मिली है।

भामा—झूठी बात। ऐसे ही भाग्य के बली हो, तो सच बताओ कहाँ मिली? किसकी है?

व्रज०—सच कहता हूँ, पड़ी मिली हैं।

भामा—मेरी कसम?

व्रज०—तुम्हारी क़सम।

भामा गिन्नियों को पति के हाथ से छीनने की चेष्टा करने लगी।

व्रजनाथ ने कहा—क्यों छीनती हो?

भामा—लाओ मैं अपने पास रख लूँ।

व्रज०—रहने दो मैं इसकी इत्तला करने थाने जाता हूँ।

भामा का मुख मलिन हो गया। बोली—पड़े हुए धन की क्या इत्तला?

व्रज०—हाँ, और क्या, इन आठ गिन्नियों के लिए ईमान बिगाड़ूँ न?

भामा—अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे, तो आने मे देर होगी।

व्रजनाथ ने भी सोचा, यही अच्छा। थानेवाले रात को तो कोई कार्रवाई करेंगे नहीं। जब अशर्फियों को पड़ा ही रहना है, तब जैसे थाना वैसे मेरा घर।

गिन्नियाँ सन्दूक में रख दी। खा-पीकर लेटे, तो भामा ने हँसकर कहा—आया धन क्यों छोड़ते हो? लाओ, मैं अपने लिए एक गुलूबन्द बनवा लूँ, बहुत दिनों से जी तरस रहा है।

माया ने इस समय हास्य का रूप धारण किया।

व्रजनाथ ने तिरस्कार करके कहा—गुलूबन्द की लालसा मे गले मे फाँसी लगाना चाहती हो क्या!

(३)

प्रातःकाल व्रजनाथ थाने जाने के लिए तैयार हुए। कानून का एक लेक्चर छूट जायगा, कोई हरज नहीं। वह इलाहाबाद की हाईकोर्ट मे अनुवादक थे। नौकरी मे उन्नति की आशा न देखकर साल-भर से वकालत की तैयारी मे मग्न थे; लेकिन अभी कपड़े पहन ही रहे थे, कि उनके एक मित्र, मुन्शी गोरेलाल आकर बैठ गये, और अपनी पारिवारिक दुश्चिन्ताओं की विस्तृत राम-कहानी सुनाकर अत्यन्त विनीत भाव से बोले—भाई साहब, इस समय मैं इन झंझटों में ऐसा फँस गया हूँ, कि

बुद्धि कुछ काम नही करती । तुम बडे आदमी हो । इस समय कुछ सहायता करो । ज्यादह नही तीस रुपए दे दो । किसी-न-किसी तरह काम चला लूँगा । आज तीस तारीख है । कल शाम को तुम्हे रुपए मिल जायँगे ।

व्रजनाथ बडे आदमी तो न थे ; किन्तु बड़प्पन की हवा बाँध रखी थी । यह मिथ्यभिमान उनके स्वभाव की एक दुर्बलता थी । केवल अपने वैभव का प्रभाव डालने के लिए ही वह बहुधा मित्रो की छोटी-मोटी आवश्यकताओ पर अपनी वास्तविक आवश्यकताओ को निछावर कर दिया करते थे , लेकिन भामा को इस विषय में उनसे सहानुभूति न थी इसीलिए जब व्रजनाथ पर इस प्रकार का सकट आ पडता था, तब थोडी देर के लिए उनकी पारवारिक शान्ति अवश्य नष्ट हो जाती थी । उनमें इनकार करने या टालने की हिम्मत न थी ।

वह कुछ सकुचते हुए भामा के पास गये, और बोले—तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होगे ? मुन्शी गोरेलाल माँग रहे हैं ।

भामा ने रुखाई से कहा—मेरे पास तो रुपए नही हैं ।

व्रज०—होगे तो जरूर, बहाना करती हो ।

भामा०—अच्छा, बहाना ही सही ।

व्रज०—तो मैं उनसे क्या कह दूँ ?

भामा०—कह दो, घर में रुपए नही हैं, तुमसे न कहते बने, तो मैं पर्दे की आड़ से कह दूँ ।

व्रज—कहने को तो मैं कह दूँ , लेकिन उन्हे विश्वास न आवेगा । समझेंगे बहाना कर रहे है ।

भामा—समझेंगे, तो समझा करे ।

व्रज०—मुझसे तो ऐसी बेमुरौवती नही हो सकती । रात-दिन साथ ठहरा, कैसे इनकार करूँ ?

भामा—अच्छा, तो जो मन मे आवे, सो करो । मैं एक बार कह चुकी, मेरे पास रुपए नही है ।

व्रजनाथ मन मे बहुत खिन्न हुए । उन्हे विश्वास था, कि भामा के

पास रुपए हैं ; लेकिन केवल मुझे लज्जित करने के लिए इनकार कर रही है। दुराग्रह ने संकल्प को दृढ़ कर दिया। सन्दूक से दो गिन्नियाँ निकालीं, और गोरेलाल को देकर बोले—भाई, कल शाम को कचहरी से आते ही रुपए दे जाना। ये एक आदमी की अमानत है। मैं इसी समय देने जा रहा था—यदि कल रुपए न पहुँचे, तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा ; कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

गोरेलाल ने मन में कहा—अमानत स्त्री के सिवा और किसकी होगी और गिन्नियाँ जेब में रखकर घर की राह ली।

(४)

आज पहली तारीख की सन्ध्या है। ब्रजनाथ दरवाजे पर बैठे गोरेलाल का इन्तजार कर रहे हैं।

पाँच बज गये, गोरेलाल अभी तक नहीं आये। ब्रजनाथ की आँखें रास्ते की तरफ लगी हुई थीं। हाथ मे एक पत्र था ; लेकिन पढ़ने में जी न लगता था। हर तीसरे मिनट रास्ते की ओर देखने लगते थे ; लेकिन सोचते थे—आज वेतन मिलने का दिन है। इसी कारण आने मे देर हो रही है, आते ही होंगे। छः बजे, गोरेलाल का पता नहीं। कचहरी के कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथ को कई बार धोखा हुआ। वह आ रहे हैं। जरूर वही हैं। वैसी ही अचकन है। वैसी ही टोपी। चाल भी वही है। हाँ, वही हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदय से एक बोझा-सा उतरता मालूम हुआ ; लेकिन निकट आने पर ज्ञात हुआ, कि कोई और है। आशा की कल्पित मूर्ति दुराशा से बदल गई।

ब्रजनाथ का चित्त खिन्न होने लगा। वह एक बार कुरसी से उठे। बरामदे की चौखट पर खड़े हो, सड़क पर दोनो तरफ निगाह दौड़ाई। कहीं पता नहीं।

दो तीन बार दूर से आते हुए इक्को को देखकर गोरेलाल का भ्रम हुआ। आकांक्षा की प्रबलता!

सात बजे चिराग जल गये। सड़क पर अँधेरा छाने लगा। ब्रजनाथ

सड़क पर उद्विग्न भाव से टहलने लगे। इरादा हुआ, गोरेलाल के घर चलूँ। उधर कदम बढ़ाये, लेकिन हृदय काँप रहा था, कि कहीं वह रास्ते मे आते हुए न मिल जायँ, तो समझे कि थोडे-से रुपयो के लिए इतने व्याकुल हो गये। थोडी ही दूर गये, कि किसी को आते देखा। भ्रम हुआ गोरेलाल हैं। मुडे, और सीधे बरामदे मे आकर दम लिया, लेकिन फिर वही धोखा! फिर वही भ्राति! तब सोचने लगे, कि इतनी देर क्यों हो रही है? क्या अभी तक वह कचहरी से न आये होगे? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तर वाले मुद्दत हुई, निकल गये। बस दो बातें हो सकती है, या तो उन्होने कल आने का निश्चय कर लिया, समझे होगे रात को कौन जाय, या जान-बूझकर बैठ रहे होगे, देना न चाहते होगे, उस समय उनको ग़रज थी, इस समय मुझे गरज है। मैं ही किसी को क्यों न भेज दूँ? लेकिन किसे भेजूँ। मुन्नू जा सकता है। सडक ही पर, मकान है। यह सोचकर कमरे मे गये, लैंप जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर आँखें द्वार ही की ओर लगी हुई थीं। अकस्मात् किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। तुरन्त पत्र को एक किताब के नीचे दबा लिया और बरामदे मे चले आये। देखा, पड़ोस का एक कुँजडा तार पढाने आया है। उससे बोले—भाई, इस समय फ़ुरसत नहीं है, थोड़ी देर मे आना। उसने कहा—बाबूजी घर-भर के आदमी घबराये है, जरा एक निगाह देख लीजिये। निदान व्रजनाथ ने झुँझलाकर उसके हाथ से तार ले लिया, और सरसरी नजर से देखकर बोले—कलकत्ते से आया है। माल नहीं पहुँचा। कुँजडे ने डरते-डरते कहा—बाबूजी, इतना और देख लीजिये, किसने भेजा है। इस पर व्रजनाथ ने तार को फेंक दिया, और बोले—मुझे इस वक्त फ़ुरसत नहीं है।

आठ बज गये। व्रजनाथ को निराशा होने लगी। मुन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मन मे निश्चय किया, आप ही जाना चाहिये, बला से बुरा मानेंगे। इनकी कहाँ तक चिन्ता करूँ? स्पष्ट कह दूँगा, मेरे रुपए दे दो। भलमनसी भलेमानसो से निभाई जा सकती है। ऐसे धूर्तों के साथ भलमनसी का व्यवहार करना मूर्खता है। अचकन पहनी, घर मे

जाकर भामा से कहा—जरा एक काम से बाहर जाता हूँ, किवाड़े बन्द कर लो।

चलने को तो चले, लेकिन पग-पग पर रुकते जाते थे। गोरेलाल का घर दूर से दिखाई दिया, लैंप जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे—चलकर क्या कहूँगा? कहीं उन्होंने जाते-जाते रुपए निकालकर दे दिये, और देर के लिए क्षमा माँगी, तो मुझे बड़ी झेंप होगी। वह मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्य-हीन समझेंगे। नहीं, रुपयों की बातचीत करूँ ही क्यों? कहूँगा—भाई, घर में बड़ी देर से पेट दर्द कर रहा है। तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नहीं है? मगर नहीं, यह बहाना कुछ भद्दा-सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। उँह! इस झंझट की जरूरत ही क्या है। वह मुझे देखकर आपही समझ जायँगे। इस विषय में बातचीत की कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़ बुन में आगे बढ़ते चले जाते थे, जैसे नदी की लहरें चाहे किसी ओर चलें, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

गोरेलाल का घर आ गया। द्वार बन्द था। ब्रजनाथ को उन्हें पुकारने का साहस न हुआ। समझे, खाना खा रहे होंगे। दरवाजे के सामने से निकले, और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मील तक चले गये। नौ बजने की आवाज कान में आई। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पड़े, लेकिन द्वार पर पहुँचे, तो अँधेरा था। वह आशारूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनट तक दुविधा में खड़े रहे। क्या करूँ? अभी बहुत सवेरा है। इतनी जल्दी थोड़े ही सो गये होंगे। दबे पाँव बरामदे पर चढ़े। द्वार पर कान लगाकर सुना, चारों ओर ताक रहे थे, कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीत की भनक कान में पड़ी। ध्यान से सुना। स्त्री कह रही थी—रुपए तो सब उठ गये, ब्रजनाथ को कहाँ से दोगे? गोरेलाल ने उत्तर दिया—ऐसी कौन-सी उतावली है, फिर दे देंगे। आज दरख्वास्त दे दी है, कल मंजूर ही हो जायगी। तीन महीने के बाद लौटेंगे, तब देखा जायगा।

ब्रजनाथ को ऐसा जान पड़ा, मानो मुँह पर किसी ने तमाचा मार

दिया। क्रोध और नैराश्य से भरे हुए बरामदे से उतर आये। घर चले, तो सीधे कदम न पड़ते थे, जैसे कोई दिन-भर का थका-माँदा पथिक हो।

(५)

व्रजनाथ रात-भर करवटें बदलते रहे। कभी गोरेलाल की धूर्त्तता पर क्रोध आता था, कभी अपनी सरलता पर। मालूम नहीं, किसी गरीब के रुपए हैं! उस पर क्या बीती होगी! लेकिन अब क्रोध या खेद से क्या लाभ? सोचने लगे—रुपए कहाँ से आवेंगे, भामा पहले ही इनकार कर चुकी है, वेतन में इतनी गुंजायश नहीं। दस-पाँच रुपए की बात होती, तो कोई कतर-ब्योंत करता। तो क्या करूँ? किसी से उधार लूँ? मगर मुझे कौन देगा? आज तक किसी से माँगने का संयोग नहीं पड़ा, और अपना कोई ऐसा मित्र है भी तो नहीं। जो लोग हैं, वे मुझी को सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हाँ, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करने में परिश्रम करूँ, तो रुपए मिल सकते हैं। कम-से-कम एक मास का कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकों के मारे दर भी तो गिर गई है। हा निर्दयी? तूने बड़ी दगा की। न जाने किस जन्म का वैर चुकाया। कहीं का न रखा!

दूसरे दिन से व्रजनाथ को रुपयों की धुन सवार हुई। सवेरे कानून के लेक्चर में सम्मिलित होते, सन्ध्या को कचहरी से तजवीजों का पुलिंदा घर लाते, और आधी रात तक बैठे अनुवाद किया करते। सिर उठाने की मुहलत न मिलती। कभी एक-दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता, तब विवश होकर चारपाई पर पड़ रहते।

लेकिन इतने परिश्रम का अभ्यास न होने के कारण कभी-कभी सिर में दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रिया में विघ्न पड़ जाता, कभी ज्वर चढ़ आता। तिस पर भी वह मशीन की तरह काम में लगे रहते। भामा कभी-कभी झुँझलाकर कहती—अजी लेट भी रहो, बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे-जैसे दस-पाँच आदमी और होते, तो संसार का काम ही बन्द हो जाता। व्रजनाथ इस बाधाकारी व्यंग्य का उत्तर न देते, दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहाँ तक कि तीन सप्ताह बीत गये, और पचीस रुपए हाथ आ गये। व्रजनाथ सोचते थे—दो-तीन दिन में बेड़ा पार है, लेकिन इक्कीसवें दिन उन्हें प्रचण्ड ज्वर चढ़ आया और तीन दिन तक न उतरा। छुट्टी लेनी पड़ी। शय्या-सेवी बन गये। भादों का महीना था। भामा ने समझा, पित्त का प्रकोप है, लेकिन जब एक सप्ताह तक डॉक्टर की औषधि-सेवन करने पर भी ज्वर न उतरा, तब वह घबराई। व्रजनाथ प्रायः ज्वर में बक-झक भी करने लगते। भामा सुनकर डर के मारे कमरे में से भाग जाती। बच्चों को पकड़कर दूसरे कमरे में बन्द कर देती। अब उसे शंका होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयों के कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा है। कौन जाने, रुपएवाले ने कुछ कर-धर दिया हो! जरूर यही बात है, नहीं तो औषधि से लाभ क्यों नहीं होता।

संकट पड़ने पर हम धर्मभीरु हो जाते हैं, औषधियों से निराश होकर देवतों की शरण लेते हैं। भामा ने भी देवतों की शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि और तीज के सिवा और कोई व्रत न रखती थी। इस बार उसने नवरात्र का कठिन व्रत शुरू किया।

आठ दिन पूरे हो गये। अन्तिम दिन आया। प्रभात का समय था। भामा ने व्रजनाथ को दवा पिलाई और दोनों बालकों को लेकर दुर्गाजी की पूजा करने मन्दिर में चली। उसका हृदय आराध्य देवी के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण था। मन्दिर के आँगन में पहुँची। उपासक आसनों पर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगर की सुगन्ध उड़ रही थी। उसने मन्दिर में प्रवेश किया। सामने दुर्गा की विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविन्द पर एक विलक्षण दीप्ति झलक रही थी। बड़े उज्ज्वल नेत्रों से प्रभा की किरणें छिटक रही थीं। पवित्रता का एक समा-सा छाया हुआ था। भामा इस दीप्ति-वर्ण मूर्ति के सम्मुख सीधी आँखों से ताक न सकी। उसके अन्तःकरण में एक निर्मल विशुद्ध, भाव-पूर्ण, भय का उदय हो आया। उसने आँखें बन्द कर ली। घुटनों के बल बैठ गई, और हाथ जोड़कर करुण स्वर से बोली—माता, मुझ पर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानो देवी मुसकिराई। उसे उन दिव्य नेत्रों से एक ज्योति-सी निकलकर अपने हृदय में आती हुई मालूम हुई। उसके कानों में देवी के मुँह से निकले ये शब्द सुनाई दिये—पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।

भामा उठ बैठी। उसकी आँखो में निर्मल भक्ति का आभास झलक रहा था। मुख-मण्डल से पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवी ने कदाचित् उसे अपनी प्रभा के रंग में डुबा दिया था।

इतने में दूसरी एक स्त्री आई। उसके उज्ज्वल केश बिखरे और मुरझाये हुए चेहरे के दोनों ओर लटक रहे थे। शरीर पर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथ में चूड़ियों के सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्य की साक्षात् मूर्ति मालूम होती थी। उसने भी देवी के सामने सिर झुकाया और दोनों हाथों से आँचल फैलाकर बोली—देवी, जिसने मेरा धन लिया हो, उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराब की चोट खाकर थरथरा उठता है, उसी प्रकार भामा का हृदय अनिष्ट के भय से थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शर के समान उसके कलेजे में चुभ गये। उसने देवी की ओर कातर नेत्रों से देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयंकर था, नेत्रों से भीषण ज्वाला निकल रही थी। भामा के अन्तःकरण मे सर्वत्र आकाश से, मन्दिर के सामनेवाले वृक्षों से, मन्दिर के स्तम्भों से, सिंहासन के ऊपर जलते हुए दीपक से और देवी के विकराल मुँह से ये शब्द निकलकर गूँजने लगे—पराया धन लौटा दे, नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।

भामा खड़ी हो गई और उस वृद्धा से बोली—क्यों माता, तुम्हारा धन किसी ने ले लिया है?

वृद्धा ने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानो डूबते को तिनके का सहारा मिला। बोली—हाँ बेटी।

भामा—कितने दिन हुए?

वृद्धा—कोई डेढ महीना।

भामा—कितने रुपये थे?

वृद्धा—पूरे एक सौ बीस ।

भामा—कैसे खोये ?

वृद्धा—क्या जाने कहीं गिर गये । मेरे स्वामी पलटन में नौकर थे । आज कई बरस हुए, वह परलोक सिधारे । अब मुझे सरकार से साठ रुपए साल पेंशन मिलती है । अबकी दो साल की पेंशन एक साथ ही मिली थी । खज़ाने से रुपए लेकर आ रही थी । मालूम नहीं, कब और कहाँ गिर पड़े । आठ गिन्नियाँ थीं ।

भामा—अगर वे तुम्हें मिल जायँ, तो क्या दोगी ?

वृद्धा—अधिक नहीं, उसमें से पचास रुपए दे दूँगी ।

भामा—रुपए क्या होंगे, कोई उससे अच्छी चीज दो ।

वृद्धा—बेटी, और क्या दूँ, जब तक जीऊँगी, तुम्हारा यश गाऊँगी।

भामा—नहीं, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं ।

वृद्धा—बेटी, इसके सिवा मेरे पास क्या है ?

भामा—मुझे आशीर्वाद दो । मेरे पति बीमार हैं, वह अच्छे हो जायँ ।

वृद्धा—क्या उन्हीं को रुपए मिले हैं ?

भामा—हाँ, वह उसी दिन से तुम्हें खोज रहे हैं ।

वृद्धा घुटनों के बल से बैठ गई, और आँचल फैलाकर कम्पित स्वर से बोली—देवी ! इनका कल्याण करो ।

भामा ने फिर देवी की ओर सशंक दृष्टि से देखा । उनके दिव्य रूप पर प्रेम का प्रकाश था । आँखों में दया की आनंददायिनी झलक थी । उस समय भामा के अन्तःकरण में कहीं स्वर्गलोक से यह ध्वनि सुनाई दी—जा तेरा कल्याण होगा ।

(६)

सन्ध्या का समय है । भामा ब्रजनाथ के साथ इक्के पर बैठ तुलसी के घर उसकी थाती लौटाने जा रही है । ब्रजनाथ के बड़े परिश्रम की कमाई तो डॉक्टर की भेंट हो चुकी है ; लेकिन भामा ने एक पड़ोसी के हाथ अपने कानों के झुमके बेचकर रुपए जुटाये है । जिस समय झुमके

बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हे वेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

जब व्रजनाथ ने आठो गिन्नियाँ उसे दिखाई थीं, उसके हृदय में एक गुदगुदी-सी हुई थी; लेकिन यह हर्ष मुख पर आने का साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियो को हाथ से जाते समय, उसका हार्दिक आनन्द आँखों में चमक रहा है, ओठों पर नाच रहा है, कपोलों को रँग रहा है और अंगों पर किलोल कर रहा है। वह इन्द्रियों का आनन्द था, यह आत्मा का आनन्द है; वह आनन्द लज्जा के भीतर छिपा हुआ था, यह आनन्द गर्व से बाहर निकला पडता है।

तुलसी का आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताह के बाद व्रजनाथ तकिये के सहारे बैठे थे। वह बार-बार भामा को प्रेम-पूर्ण नेत्रो से देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थी। अब तक उन्होंने उसके बाह्य सौंदर्य की शोभा देखी थी, आज वह उसका आत्मिक सौंदर्य देख रहे है।

तुलसी का घर एक गली में था। इक्का सड़क पर जाकर ठहर गया। व्रजनाथ इक्के पर से उतरे, और अपनी छड़ी टेकते हुए भामा के हाथों के सहारे तुलसी के घर पहुँचे। तुलसी ने रुपए लिये और दोनों हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया—दुर्गाजी तुम्हारा कल्याण करें!

तुलसी का वर्णहीन मुख वैसे ही खिल गया, जैसे वर्षा के पीछे वृक्षों की पत्तियाँ खिल जाती है। सिमटा हुआ अग फैल गया, गालो की झुर्रियाँ मिटती देख पड़ीं। ऐसा मालूम होता था, मानो उसका काया-कल्प हो गया।

वहाँ से आकर व्रजनाथ अपने द्वार पर बैठे हुए थे, कि गोरेलाल आकर बैठ गये। व्रजनाथ ने मुँह फेर लिया।

गोरेलाल बोला—भाई साहब, कैसी तबीयत है।

व्रजनाथ—बहुत अच्छी तरह हूँ।

गोरेलाल—मुझे क्षमा कीजियेगा। मुझे इसका बहुत खेद है, कि आपके रुपए देने में इतना विलम्ब हुआ। पहली तारीख ही को घर से एक

आवश्यक पत्र आ गया, और मैं किसी तरह तीन महीने की छुट्टी लेकर घर भागा। वहाँ की विपत्ति-कथा कहूँ, तो समाप्त न हो; लेकिन आपकी बीमारी का शोक समाचार सुनकर आज भागा चला आ रहा हूँ। ये लीजिये, रुपए हाज़िर हैं। इस विलम्ब के लिए अत्यन्त लज्जित हूँ।

व्रजनाथ का क्रोध शान्त हो गया। विनय में कितनी शक्ति है! बोले—जी हाँ, बीमार तो था, लेकिन अब अच्छा हो गया हूँ। आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो, तो रुपये फिर दे दीजियेगा। मैं अब उऋण हो गया हूँ। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल विदा हो गये, तो व्रजनाथ रुपए लिये हुए भीतर आये, और भामा से बोले—ये लो अपने रुपये, गोरेलाल दे गये।

भामा ने कहा—ये मेरे रुपए, नहीं, तुलसी के हैं, एक बार पराया धन लेकर सीख गई।

व्रज०—लेकिन तुलसी के तो पूरे रुपये दे दिये गये?

भामा—दे दिये गये, तो क्या हुआ? ये उसके आशीर्वाद की न्योछावर हैं।

व्रज०—कान के झुमके कहाँ से आवेंगे?

भामा—झुमके न रहेंगे न सही, सदा के लिए 'कान' तो हो गये।

बड़े घर की बेटी

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर-गाँव के ज़मींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन-धान्य संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति-स्तंभ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि-पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी, क्योंकि एक-न-एक आदमी हाँडी लिये उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों की भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हज़ार रुपए वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा, चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध, वह उठकर सवेरे पी जाता था। श्रीकंठसिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्र प्रिय गुणों को उन्होंने बी०ए०—इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम-सवेरे उनके कमरे से प्रायः खरल की सुरीली कर्णमधुर-ध्वनि सुनाई दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अँगरेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अँगरेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे, बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उनकी निन्दा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में

सम्मिलित होते और स्वय किसी-न-किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू-सभ्यता का गुण-गान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुम्ब के तो वह एक-मात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियो की कुटुम्ब में मिल जुलकर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था, कि गाँव की ललनाएँ उनकी निन्दक थीं। कोई-कोई तो उन्हे अपना शत्रु समझने मे भी संकोच न करती थीं। स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय मे उनसे विरोध था। यह इसलिए नहीं, कि उसे अपनी सास-ससुर, देवर या जेठ आदि से घृणा थी; बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है, कि अपनी खिचडी अलग पकाई जाय।

आनन्दी एक बडे उच्च कुल की लड्की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल-भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी-शिकरे, झाड-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ है, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिह। बडे उदार-चित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे, पर दुर्भाग्य से लडका एक भी न था। सात लडकियाँ हुई और दैवयोग से सब की सब जीवित रही। पहली उमग मे तो उन्होने तीन ब्याह दिल खोलकर किये; पर जब पन्द्रह-बीस हजार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आँखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लडकी थी। वह अपनी सब बहनो से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर सन्तान को कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते है। ठाकुर साहब बडे धर्म-सकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें। न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था, कि उसे अपने को भाग्य-हीन समझना पडे। एक दिन श्रीकण्ठ उनके पास किसी चन्दे का रुपया मॉगने आये। शायद नागरी-

प्रचार का चन्दा था। भूपसिंह उनके स्वभाव पर रीझ गये और धूमधाम से श्रीकंठसिंह का आनन्दी के साथ ब्याह हो गया।

आनन्दी अपने नये घर में आई, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाम-मात्र को भी न थी। हाथी, घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुन्दर बहेली तक न थी। रेशमी-स्लीपर साथ लाई थी, पर यहाँ बाग कहाँ! मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीन पर फ़र्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था; किन्तु आनन्दी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नई अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

(२)

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़ियाँ लिये हुए आया और भावज से बोला—जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनन्दी भोजन बनाकर इसकी राह देख रही थी। अब यह नया व्यञ्जन बनाने बैठी। हाँड़ी में देखा, तो घी पाव-भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला—दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनन्दी ने कहा—घी सब मांस में पड़ गया। लालबिहारी जोर से बोला—अभी परसों घी आया है, इतना जल्द उठ गया?

आनन्दी ने उत्तर दिया—आज तो कुल पाव-भर रहा होगा। वह सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य जरा-ज़रा-सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तनककर बोला—मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो!

स्त्री गालियाँ सह लेती है मार भी सह लेती है, पर मैके की निन्दा

उनसे नहीं सही जाती। आनन्दी मुँह फेरकर बोली—हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी, और बोला—जी चाहता है, जीभ पकड़कर खींच लूँ।

आनन्दी को भी क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली—वह होते, तो आज इसका मजा चखाते।

अब अपढ, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊँ उठाकर आनन्दी की ओर जोर से फेंकी, और बोला—जिससे गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हे भी।

आनन्दी ने हाथ से खडाऊँ रोकी ; सिर बच गया ; पर उँगली मे बड़ी चोट आई। क्रोध के मारे हवा से हिलते हुए पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे मे आकर खड़ी हो गई। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमण्ड होता है। आनन्दी खून का घूँट पीकर रह गई।

(३)

श्रीकंठ सिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी, दो दिन तक आनन्दी कोप-भवन में रही। न कुछ खाया, न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्त मे शनिवार को वह नियमानुकूल सन्ध्या समय घर आये और बाहर बैठकर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश-काल-सम्बन्धी समाचार तथा कुछ नये मुकदमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनन्द मिलता था, कि खाने-पीने की भी सुध न रहती थी। श्रीकंठ को पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो-तीन घण्टे आनन्दी ने बड़े कष्ट से काटे। किसी तरह भोजन का समय आया। पचायत उठी। जब एकान्त हुआ, तो लालबिहारी ने कहा—भैया, आप ज़रा भाभी को समझा दीजियेगा, कि मुँह सँभालकर बातचीत किया करे, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधव सिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी—हाँ, बहू बेटियो का यह स्वभाव अच्छा नहीं, कि मर्दों के मुँह लगे।

लालबिहारी—वह बडे घर की बेटी है, तो हम भी कोई कुर्मी कहार नहीं हैं।

श्रीकंठ ने चिंतित स्वर से पूछा—आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारी ने कहा—कुछ भी नहीं, यों ही आप ही-आप उलझ पडी। मैके के सामने हम लोगो को तो कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकंठ खा-पीकर आनन्दी के पास गये। वह भरी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनन्दी ने पूछा—चित्त तो प्रसन्न है?

श्रीकंठ बोले—बहुत प्रसन्न है, पर तुमने आजकल घर मे यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनन्दी की तेवरियों पर बल पड गये, झुंझलाहट के मारे बदन मे ज्वाला-सी दहक उठी। बोली—जिसने तुमसे यह आग लगाई है, उसे पाऊँ, तो मुँह झुलस दूँ।

श्रीकंठ—इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो।

आनन्दी—क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है! नहीं तो एक गँवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मारकर यों न अकड़ता।

श्रीकंठ—सब साफ साफ हाल कहो, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाडले भाई ने मुझसे मास पकाने को कहा। घी हाँड़ी मे पाव-भर से अधिक न था। वह सब मैंने मास मे डाल दिया। जब खाने बैठा, तो कहने लगा—दाल मे घी क्यो नहीं है? बस, इसी पर मेरे मैके को भला-बुरा कहने लगा—मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो नाई-कहार खा जाते है, और किसी को जान भी नहीं पडता। बस, इतनी-सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खडाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ, तो सिर फट जाय। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकंठ की आँखें लाल हो गईं। बोले—यहाँ तक हो गया! इस छोकरे का यह साहस!

आनन्दी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी; क्योंकि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान् और शांत पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था; पर स्त्रियों के आँसू पुरुषों की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात-भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले—दादा, अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह पूर्ण बातें कहने पर श्रीकंठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था, परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ीं। दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधव सिंह घबरा उठे और बोले—क्यों?

श्रीकंठ—इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब न्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर-सम्मान करना चाहिये, वे उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का नौकर ठहरा, घर पर रहता नहीं, यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊँ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिंता नहीं, कोई एक की दो कह ले, यहाँ तक मैं सह सकता हूँ; किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता, कि मेरे ऊपर लात-घूँसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़ा ठाकुर अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला—बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इसी तरह घर का नाश कर देती हैं उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकंठ—इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं, कि मेरे ही समझाने-बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गये; पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का मैं ईश्वर के

दर्बार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यय-हार मुझे असह्य है। आप सच मानिये, मेरे लिए यही कुछ कम नहीं है, कि लालबिहारी को कुछ दण्ड नहीं देता।

अब वेनीमाधवसिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले—लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल-चूक हो, उसके कान पकडो। लेकिन...

श्रीकंठ—लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

वेनीमाधव सिंह—स्त्री के पीछे?

श्रीकंठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लडके का क्रोध शान्त करना चाहते थे; लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे, कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच मे गाँव के और कई सज्जन हुक्के चिलम के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना, कि श्रीकंठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने पर तैयार हैं, तो उन्हे बडा हर्ष हुआ। दोनों पक्षो की मधुर वाणियाँ सुनने के लिए उनकी आत्माएँ तलमलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीति-पूर्ण गति पर मन-ही-मन जलते थे, वे कहा करते थे—श्रीकंठ अपने बाप से दबता है; इसलिए वह दब्बू है। उसने विद्या पढी, इसलिए वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभ कामनाएँ आज पूरी होती दिखाई दी। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आकर बैठ गया। बेनीमाधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया, कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, उन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरन्त कोमल शब्दों में बोले—बेटा, मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग-क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत

थी, इन हथकडो की उसे क्या खबर ? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला—मैं लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान् लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लडका है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बडे होकर क्षमा करो।

श्रीकठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर मे रहेगा, या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे बिदा कीजिये, मैं अपना भार आप सॅभाल लूॅगा। यदि मुझे रखना चाहते है, तो उससे कहिये, जहाँ चाहे चला जाय। बस, यह मेरा अतिम निश्चय है।

लालबिहारीसिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खडा बडे भाई की बाते सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था, कि श्रीकठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले, या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुडका तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई-न-कोई वस्तु अवश्य लाते। मुगदर की जोड़ी उन्होने बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढे जवान को नागपचमी के दिन दगल मे पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाडे में ही जाकर उसे गले लगा लिया था, पाँच रुपए के पैसे लुटाये थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूटकर रोने लगा। इसमें सन्देह नहीं, कि वह अपने किये पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी, कि देखूॅ, भैया क्या कहते है। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूॅगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेगी। उसने समझा था, कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था; परन्तु उसका

मन कहता था, कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकंठ उसे अकेले में बुलाकर दो-चार कड़ी बातें कह देते, इतना ही नहीं, दो-चार तमाचे भी लगा देते, तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना, कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से न सहा गया। वह रोता हुआ घर में आया। कोठरी में जाकर कपड़े पहने, आँखें पोंछी, जिसमें कोई यह न समझे, कि रोता था। तब आनंदी के द्वार पर आकर बोला—भाभी, भैया ने निश्चय किया है, कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। वह अब मेरा मुँह नहीं देखना चाहते, इसलिए मैं अब जाता हूँ, उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

(४)

जिस समय लालबिहारीसिंह सिर झुकाये आनन्दी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठसिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतराकर निकल गये। मानो उसकी परछाहीं से दूर भागते हैं।

आनन्दी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था, कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था, कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी। इसी बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना, कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठ को देखकर आनन्दी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो

श्रीकण्ठ—तो मैं क्या करूँ ?

आनदी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे ! मैंने कहाँ से यह झगडा उठाया।

श्रीकठ—मैं न बुलाऊँगा।

आनदी—पछताओगे। उन्हे बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो कहीं चल दें।

श्रीकठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा—भाभी भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते ; इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हे न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढा। अन्त में आनदी कमरे से निकली, और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिरकर देखा, और आँखों में आँसू भरे बोला—मुझे जाने दो।

आनदी—कहा जाते हो ?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनदी—मैं न जाने दूँगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगो के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनदी—तुम्हे मेरी सौगद, अब एक पग भी आगे न बढ़ना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय, कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनदी—मैं ईश्वर की साक्षी देकर कहती हूँ, कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकठ का हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट फूटकर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया, अब कभी मत कहना, कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे, वह मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

सत्याग्रह

हिज एक्सेलेंसी वायसराय बनारस आ रहे थे। सरकारी कर्मचारी, छोटे से बड़े तक, उनके स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। इधर कांग्रेस ने शहर में हड़ताल मनाने की सूचना दे दी थी। इससे कर्मचारियों में बड़ी हलचल थी। एक ओर सड़कों पर झंडियाँ लगाई जा रही थीं, सफाई हो रही थी, बड़े-बड़े विशाल फाटक बनाये जा रहे थे, दफ़्तरों की सजावट हो रही थी, पण्डाल बन रहा था; दूसरी ओर फौज और पुलिस के सिपाही संगीनें चढ़ाये शहर की गलियों में और सड़कों पर कवायद करते फिरते थे। कर्मचारियों की सिर-तोड़ कोशिश थी, कि हड़ताल न होने पावे; मगर कांग्रेसियों की धुन थी, कि हड़ताल हो और जरूर हो। अगर कर्मचारियों को पशु-बल का जोर है, तो हमें नैतिक बल का भरोसा है। इस बार दोनों की परीक्षा हो जाय, कि मैदान किसके हाथ रहता है।

घोड़े पर सवार मैजिस्ट्रेट सुबह से शाम तक दूकानदारों को धमकियाँ देता फिरता, कि एक-एक को जेल भेजवा दूँगा, बाजार लुटवा दूँगा; यह करूँगा, वह करूँगा। दूकानदार हाथ बाँधकर कहते—हुजूर बादशाह हैं, विधाता हैं, जो चाहें, कर सकते हैं, पर हम क्या करें? कांग्रेस-वाले हमें जीता न छोड़ेंगे। हमारी दूकानों पर धरने देंगे, हमारे ऊपर बाल बढ़ावेंगे, कुएँ में गिरेंगे, उपवास करेंगे। कौन जाने दो-चार प्राण ही दे दें तो हमारे मुँह पर सदैव के लिए कालिख पुत जायगी। हुजूर उन्हीं कांग्रेसवालों को समझावें, तो हमारे ऊपर बड़ा एहसान करें। हड़ताल न करने से हमारी कुछ हानि थोड़े ही होवेगी। देश के बड़े-बड़े आदमी आवेंगे, हमारी दुकानें खुली रहेंगी, तो एक के दो लेंगे, महँगे सौदे बेचेंगे, पर करें क्या, इन शैतानों से तो कोई बस नहीं चलता।

राय हरनन्दन साहब, राजा लालचन्द और खाँ बहादुर मौलवी महमूदअली तो कर्मचारियों से भी ज्यादा बेचैन थे। मजिस्ट्रेट के साथ-

साथ और अकेले भी बड़ी कोशिश करते थे। अपने मकान पर बुलाकर दूकानदारों को समझाते, अनुनय-विनय करते, आँखें दिखाते, इक्के-बग्घीवालों को धमकाते, मजदूरों की खुशामद करते ; पर कांग्रेस के मुट्ठी भर आदमियों का कुछ ऐसा आतंक छाया हुआ था, कि कोई इनकी सुनता ही न था। यहाँ तक कि पड़ोस की कुँजड़िन ने भी निर्भय होकर कह दिया—हुजूर, चाहे मार डालो, पर दूकान न खुलेगी। नाक न कटवाऊँगी। सबसे बड़ी चिन्ता यह थी, कि कहीं पण्डाल बनाने-वाले मजदूर, बढ़ई, लोहार वगैरह काम न छोड़ दें, नहीं तो अनर्थ ही हो जायगा। राय साहब ने कहा—हुजूर, दूसरे शहरों से दूकानदार बुलवायें और एक बाजार अलग खोलें।

खाँ साहब ने फरमाया—वक्त इतना कम रह गया है, कि दूसरा बाजार तैयार नहीं हो सकता। हुजूर कांग्रेसवालों को गिरफ्तार कर लें, या उनकी जायदाद जब्त कर लें, फिर देखिये कैसे काबू में नहीं आते!

राजा साहब बोले—पकड़-धकड़ से तो लोग और भी झल्लायेंगे। कांग्रेसवालों से हुजूर कहें, कि तुम हड़ताल बन्द कर दो, तो सबको सरकारी नौकरी दे दी जायगी। उसमें अधिकांश बेकार लोग भरे पड़े हैं, यह प्रलोभन पाते ही फूल उठेंगे।

मगर मैजिस्ट्रेट को कोई राय न जँची। यहाँ तक कि वायसराय के आने में तीन दिन और रह गये।

(२)

आखिर राजा साहब को एक युक्ति सूझी। क्यों न हम लोग भी नैतिक बल का प्रयोग करें? आखिर कांग्रेसवाले धर्म और नीति के नाम पर ही तो यह तूमार बाँधते हैं। हम लोग भी उन्हीं का अनुकरण करें, शेर को उसके माँद में पछाड़ें। कोई ऐसा आदमी पैदा करना चाहिये, जो व्रत करे, कि दुकानें न खुलीं, तो मैं प्राण दे दूँगा। यह जरूरी है, कि वह ब्राह्मण हो, और ऐसा, जिसको शहर के लोग मानते हों, आदर करते हों। अन्य सहयोगियों के मन में भी यह बात बैठ गई। उछल पड़े।

राय साहब ने कहा—बस अब पड़ाव मार लिया। अच्छा, ऐसा कौन पण्डित है, पण्डित गदाधर शर्मा ?

राजा साहब—जी नहीं, उसे कौन मानता है ? खाली समाचार-पत्रों में लिखा करता है। शहर के लोग उसे क्या जानें ?

राय साहब—दमड़ी ओझा तो है इस ढंग का ?

राजा साहब—जी नहीं, कॉलेज के विद्यार्थियों के सिवा उसे और कौन जानता है ?

राय साहब—पण्डित मोटेराम शास्त्री ?

राजा साहब—बस-बस। आपने खूब सोचा। बेशक वह है इस ढंग का। उसी को बुलाना चाहिये। विद्वान् है, धर्म-कर्म से रहता है, चतुर भी है। वह अगर हाथ में आ जाय, तो फिर बाजी हमारी।

राय साहब ने तुरन्त पण्डित मोटेराम के घर संदेशा भेजा। उस समय शास्त्रीजी पूजा पर थे। यह पैगाम सुनते ही जल्दी से पूजा समाप्त की, और चले। राजा साहब ने बुलाया है, धन्य भाग! धर्मपत्नी से बोले—आज चन्द्रमा कुछ बली मालूम होते हैं। कपड़े लाओ, देखूँ क्यों बुलाया है।

स्त्री ने कहा—भोजन तैयार है, करके जाओ, न जाने कब लौटने का अवसर मिले।

किन्तु शास्त्रीजी ने आदमी को इतनी देर खड़ा रखना उचित न समझा। जाड़े के दिन थे। हरी बनात की अचकन पहनी, जिस पर लाल शंजाफ लगी हुई थी। गले मे एक जरी का दुपट्टा डाला। सिर पर बनारसी साफा बाँधा। लाल चौड़े किनारे की रेशमी धोती पहनी, और खड़ाऊँ पर चले। उनके मुख से ब्रह्म-तेज टपकता था। दूर ही से मालूम होता था, कोई महात्मा आ रहे हैं। रास्ते में जो मिलता, सिर झुकाता। कितने ही दूकानदारों ने खड़े होकर पैलगी की। आज काशी का नाम इन्हीं की बदौलत चल रहा है; नहीं तो और कौन रह गया है। कितना नम्र स्वभाव है। बालकों से हँसकर बातें करते हैं। इस ठाट से पण्डितजी राजा साहब के मकान पर पहुँचे। तीनों मित्रों ने खड़े

होकर उनका सम्मान किया। खाँ बहादुर बोले—कहिये पण्डितजी मिजाज तो अच्छे हैं? वल्लाह, आप नुमाइश मे रखने के काबिल आदमी है। आपका वजन दस मन से कम तो न होगा?

राय साहब—एक मन इल्म के लिए दस मन अक़्ल चाहिए। उसी कायदे से एक मन अक़्ल के लिए दस मन का जिस्म जरूरी है, नहीं तो उसका बोझ कौन उठावे?

राजा साहब—आप लोग इसका मतलब नहीं समझते। बुद्धि एक प्रकार का नजूला है; जब दिमाग में नहीं समाती, तो जिस्म मे आ जाती है।

खाँ साहब—मैंने तो बुजुर्गों की जबानी सुना है, कि मोटे आदमी अक़्ल के दुश्मन होते हैं।

राय साहब—आपका हिसाब कमजोर था, वर्ना आपकी समझ में इतनी बात जरूर आती, कि अक़्ल और जिस्म मे एक और दस की निस्बत है, तो जितना ही मोटा आदमी होगा, उतना ही उसकी अक़्ल का वजन भी ज्यादा होगा।

राजा साहब—इससे यह साबित हुआ, कि जितना ही मोटा आदमी उतनी ही मोटी उसकी अक़्ल।

मोटेराम—जब मोटी अक़्ल की बदौलत राज-दरबार मे पूछ होती है, तो मुझे पतली अक़्ल लेकर क्या करना है?

हास-परिहास के बाद राजा साहब ने वर्तमान समस्या पंडितजी के सामने उपस्थित की, और उसके निवारण का जो उपाय सोचा था, वह भी प्रकट किया। बोले—बस, यह समझ लीजिये, कि इस साल आपका भविष्य पूर्णतया अपने हाथों में है। शायद किसी आदमी को अपने भाग्य-निर्णय का ऐसा महत्त्व-पूर्ण अवसर न मिला होगा। हड़ताल न हुई, तो और कुछ नहीं कह सकते, आपको जीवन-भर किसी के दरवाजे जाने की जरूरत न होगी। बस, ऐसा कोई व्रत ठानिये, कि शहरवाले थर्रा उठें। कांग्रेसवालों ने धर्म का अवलंबन करके इतनी शक्ति बढ़ाई है। बस, ऐसी कोई युक्ति निकालिये, कि जनता के धार्मिक भावों को चोट पहुँचे।

मोटेराम ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया—यह तो कोई ऐसा कठिन काम नहीं है। मैं तो ऐसे-ऐसे अनुष्ठान कर सकता हूँ, कि आकाश से जल-वर्षा करा दूँ ; मरी के प्रकोप को भी शान्त कर दूँ, अन्न का भाव घटा-बढ़ा दूँ। कांग्रेसवालो को परास्त कर देना तो कोई बड़ी बात नहीं। अँगरेजी पढे-लिखे महानुभाव समझते हैं, कि जो काम हम कर सकते हैं, वह कोई नही कर सकता, पर गुप्त विद्याओ का उन्हे भी ज्ञान नहीं।

खाँ साहब—तब तो जनाब, यह कहना चाहिये, कि आप दूसरे खुदा हैं। हमें क्या मालूम था कि आप में यह कुदरत है, नही तो इतने दिनो तक क्यो परेशान होते।

मोटेराम—साहब, मैं गुप्त धन का पता लगा सकता हूँ, पितरो को बुला सकता हूँ, केवल गुण-ग्राहक चाहिये। (संसार में गुणियों का अभाव नहीं है, गुणज्ञो का ही अभाव है।—'गुन ना हिरानो गुनग्राहक हिरानो है।'

राजा साहब—भला इस अनुष्ठान के लिए आपको क्या भेंट करना होगा।

मोटेराम—जो कुछ आपकी श्रद्धा हो।

राजा साहब—कुछ बतला सकते हैं, कि यह कौन-सा अनुष्ठान होगा?

मोटेराम—अनशन-व्रत के साथ मंत्रो का जप होगा। सारे शहर में हलचल न मचा दूँ, तो मोटेराम नाम नहीं।

राजा साहब—तो फिर कब से?

मोटेराम—आज ही हो सकता है। हाँ, पहले देवताओं के आवाहन के निमित्त थोड़े-से रुपए दिला दीजिये।

रुपये की कमी ही क्या थी। पण्डितजी को रुपए मिल गये और वह खुश-खुश घर आये। धर्मपत्नी से सारा समाचार कहा। उसने चिंतित होकर कहा—तुमने नाहक यह रोग अपने सिर लिया! भूख न बरदाश्त हुई, तो? सारे शहर में भद हो जायगी, लोग हँसी उड़ावेंगे। रुपए लौटा दो।

मोटेराम ने आश्वासन देते हुए कहा—भूख कैसे न बरदाश्त होगी? मैं ऐसा मूर्ख थोड़े ही हूँ, कि यों ही जा बैठूँगा ; पहले मेरे भोजन का

प्रबन्ध करो। इमर्तियाँ, लड्डू, रसगुल्ले मँगाओ। पेट भर भोजन कर लूँ। फिर आध सेर मलाई खाऊँगा, उसके ऊपर आध सेर बादाम की तह जमाऊँगा। बची खुची कसर मलाईवाले दही से पूरी कर दूँगा। फिर देखूँगा, भूख क्योकर पास फटकती है! तीन दिन तक तो साँस ही न ली जायगी, भूख की कौन चलावे। इतने मे तो सारे शहर मे खलबली मच जायगी। भाग्य का सूर्य उदय हुआ है, इस समय आगा-पीछा करने से पछताना पड़ेगा। बाजार न बन्द हुआ, तो समझ लो, मालामाल हो जाऊँगा। नहीं तो यहाँ गाँठ से क्या जाता है? सौ रुपए तो हाथ लग ही गये।

इधर तो भोजन का प्रबन्ध हुआ, उधर पडित मोटेराम ने डौंडी पिटवा दी, कि संध्या-समय टाउन-हाल के मैदान में पडित मोटेराम देश की राजनीतिक समस्या पर व्याख्यान देंगे, लोग अवश्य आवें। पडितजी सदैव राजनीतिक विषयो से अलग रहते थे। आज वह इस विषय पर कुछ बोलेंगे, सुनना चाहिये। लोगों को उत्सुकता हुई। पण्डितजी का शहर मे बड़ा मान था। नियत समय पर कई हजार आदमियों की भीड़ लग गई। पण्डितजी घर से अच्छी तरह तैयार होकर पहुँचे। पेट इतना भरा हुआ था, कि चलना कठिन था। ज्योंही वह वहाँ पहुँचे, दर्शकों ने खड़े होकर इन्हे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

मोटेराम बोले—नगर-वासियो, व्यापारियो, सेठो, और महाजनो, मैंने सुना है, तुम लोगो ने कांग्रेसवालों के कहने में आकर बडे लाट साहब के शुभागमन के अवसर पर हडताल करने का निश्चय किया है। यह कितनी बड़ी कृतघ्नता है? वह चाहे, तो आज तुम लोगों को तोप के मुँह पर उड़वा दें, सारे शहर को खुदवा डालें। राजा है, हँसी-ठट्ठा नहीं। वह तरह देते जाते है, तुम्हारी दीनता पर दया करते है, और तुम गउओं की तरह हत्या के बल खेत चरने को तैयार हो? लाट साहब चाहे, तो आज रेल बन्द कर दे, डाक बन्द कर दे, माल का आना जाना बन्द कर दें। तब बताओ, क्या करोगे? वह चाहे, तो आज सारे शहर-वालो को जेल में डाल दें। बताओ, क्या करोगे? तुम उनसे भागकर

कहाँ जा सकते हो ? है कहीं का ठिकाना ? इसलिए जब इसी देश में और उन्ही के अधीन रहना है, तो इतना उपद्रव क्यों मचाते हो ? याद रखो, तुम्हारी जान उनकी मुट्ठी में है। ताऊन के कीडे फैला दें, तो सारे नगर मे हाहाकार मच जाय। तुम झाड़ू से आँधी को रोकने चले हो ? खबरदार, जो किसी ने बाजार बन्द किया, नहीं तो कहे देता हूँ, यही अन्न-जल बिना प्राण दे दूँगा।

एक आदमी ने शका की—महाराज, आपके प्राण निकलते-निकलते महीने-भर से कम न लगेगा। तीन दिन मे क्या होगा ?

मोटेराम ने गरजकर कहा—प्राण शरीर मे नहीं रहता, ब्रह्माण्ड में रहता है। मैं चाहूँ, तो योग-बल से अभी प्राण-त्याग कर सकता हूँ। मैंने तुम्हे चेतावनी दे दी ; अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मेरा कहना मानोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा। न मानोगे, तो हत्या लगेगी, ससार में कहीं मुँह न दिखा सकोगे। बस, यह लो मैं यहीं आसन जमाता हूँ।

(३)

शहर मे यह समाचार फैला, तो लोगों के होश उड़ गये। अधिकारियों की इस नई चाल ने उन्हें हतबुद्धि-सा कर दिया। काग्रेस के कर्मचारी तो अब भी कहते थे—यह सब पाखण्ड है। राजभक्तो ने पण्डित को कुछ दे-दिलाकर यह स्वाँग खडा किया है। जब और कोई बस न चला, फौज, पुलिस, कानून, सभी युक्तियों से हार गये, तो यह नई माया रची है। यह और कुछ नहीं, राजनीति का दिवाला है। नहीं तो पडितजी ऐसे कहाँ के देश-सेवक थे, जो देश की दशा से दुःखी होकर व्रत ठानते। इन्हें भूखों मरने दो, दो दिन में चें बोल जायँगे। इस नई चाल की जड अभी से काट देनी चाहिये। कहीं यह चाल सफल हो गई, तो समझ लो, अधिकारियों के हाथ में एक नया शस्त्र आ जायगा, और वह सदैव इसका प्रयोग करेंगे। जनता इतनी समझदार तो है नहीं, कि इन रहस्यों को समझे। गीदड़-भबकी मे आ जायगी।

लेकिन नगर के बनिये-महाजन, जो प्रायः धर्म-भीरु होते है, ऐसे

घबरा गये, कि उन पर इन बातों का कुछ असर ही न होता था। वे कहते थे—साहब, आप लोगों के कहने से सरकार से बुरे बने। नुकसान उठाने को तैयार हुए। रोजगार छोड़ा। कितनों के दिवाले हो गये। अफसरों को मुँह दिखाने लायक नहीं रहे। पहले जहाँ जाते थे, अधिकारी लोग 'आइये सेठजी' कहकर सम्मान करते थे, अब रेलगाड़ियों में धक्के खाते हैं, पर कोई नहीं सुनता। आमदनी चाहे कुछ हो या नहीं, बहियों की तौल देखकर कर (टैक्स) बढ़ा दिया जाता है। यह सब सहा और सहेंगे, लेकिन धर्म के मामले में हम आप लोगों का नेतृत्व नहीं स्वीकार कर सकते। जब एक विद्वान्, कुलीन, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण हमारे ऊपर अन्न-जल त्याग कर रहा है, तब हम क्योंकर भोजन करके टाँगें फैलाकर सोवें! कहीं मर गया, तो भगवान् के सामने क्या जवाब देंगे?

सारांश यह कि कांग्रेसवालों की एक न चली। व्यापारियों का एक डेपुटेशन नव बजे रात को पंडितजी की सेवा में उपस्थित हुआ। पंडितजी ने आज भोजन तो खूब डटकर किया था; लेकिन भोजन डटकर करना उनके लिए कोई असाधारण बात न थी। महीने में प्रायः बीस दिन वह अवश्य ही न्योता पाते थे, और निमन्त्रण में डटकर भोजन करना एक स्वाभाविक बात है। अपने सहभोजियों की देखा-देखी, लाग-डाट की धुन में या गृह-स्वामी के सविनय आग्रह से और सबसे बढ़कर पदार्थों की उत्कृष्टता के कारण, भोजन मात्रा से अधिक हो ही जाता है। पंडितजी की जठराग्नि ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होती रहती थी; अतएव इस समय भोजन का समय आ जाने से उनकी नीयत कुछ डावाँ-डोल हो रही थी। यह बात नहीं कि वह भूख से व्याकुल थे, लेकिन भोजन का समय आ जाने पर अगर पेट अफरा हुआ न हो, अजीर्ण न हो गया हो, तो मन में एक प्रकार की भोजन की चाह होने लगती है। शास्त्रीजी की इस समय यही दशा हो रही थी। जी चाहता था, किसी खोंचेवाले को पुकारकर कुछ ले लेते, किन्तु अधिकारियों ने उनकी शरीर रक्षा के लिए वहाँ कई सिपाहियों को तैनात कर दिया था। वे सब हटने का नाम न लेते थे। पंडितजी की विशाल बुद्धि इस समय यही समस्या हल कर रही थी, कि

इन यमदूतों को कैसे टालूँ ? खामखाह इन पाजियों को यहाँ खड़ा कर दिया! मैं कोई कैदी तो हूँ नहीं, कि भाग जाऊँगा।

अधिकारियों ने शायद यह व्यवस्था इसलिए कर रखी थी, कि कांग्रेसवाले जबरदस्ती पंडितजी को वहाँ से भगाने की चेष्टा न कर सकें। कौन जाने, वे क्या चाल चलें। कही किसी कुत्ते ही को उन पर छोड़ दें, या दूर से पत्थर फेंकने लगें! ऐसे अनुचित और अपमानजनक व्यवहारों से पंडितजी की रक्षा करना अधिकारियों का कर्तव्य था।

वह अभी इसी चिन्ता में थे, कि व्यापारियों का डेपुटेशन आ पहुँचा। पंडितजी कुहनियों के बल लेटे हुए थे, सँभल बैठे। नेताओं ने उनके चरण छूकर कहा—महाराज, हमारे ऊपर आपने क्यों यह कोप किया है? आपकी जो आज्ञा हो, वह हम शिरोधार्य करें। आप उठिये, अन्न-जल ग्रहण कीजिये। हमें नहीं मालूम था, कि आप सचमुच यह व्रत ठाननेवाले हैं, नहीं तो हम पहले ही आपसे विनती करते। अब कृपा कीजिये, दस बजने का समय है। हम आपका वचन कभी न टालेंगे।

मोटे०—ये कांग्रेसवाले तुम्हे मटिया-मेट करके छोड़ेंगे। आप तो डूबते ही हैं, तुम्हे भी अपने साथ ले डूबेंगे। बाजार बन्द रहेगा, तो इसमे तुम्हारा ही टोटा होगा, सरकार को क्या? तुम नौकरी छोड़ दोगे, आप भूखों मरोगे, सरकार को क्या? तुम जेल जाओगे आप चक्की पीसोगे, सरकार को क्या? न जाने इन सबको क्या सनक सवार हो गई है, कि अपनी नाक कटाकर दूसरों का असगुन मनाते हैं। तुम इन कुपथियों के कहने मे न आओ। क्यों, दूकानें खुली रखोगे?

सेठ—महाराज, जब तक शहर-भर के आदमियों की पंचायत न हो जाय, तब तक हम इसका बीमा कैसे ले सकते हैं? कांग्रेसवालों ने कहीं लूट मचवा दी, तो कौन हमारी मदद करेगा? आप उठिये, भोजन पाइये, हम कल पंचायत करके आपकी सेवा में जैसा कुछ होगा, हाल देंगे।

मोटे०—तो फिर पंचायत करके आना।

डेपुटेशन जब निराश होकर लौटने लगा, तो पंडितजी ने कहा—किसी के पास सुँघनी तो नहीं है ?

एक महाशय ने डिबिया निकालकर दे दी।

(४)

लोगो के जाने के बाद मोटेराम ने पुलीसवालों से पूछा—तुम यहाँ क्यो खडे हो ?

सिपाहियो ने कहा—साहब का हुक्म है, क्या करें ?

मोटे०—यहाँ से चले जाओ।

सिपाही—आपके कहने से चले जायँ ? कल नौकरी छूट जायगी, तो आप खाने को देंगे ?

मोटे०—हम कहते है, चले जाओ, नहीं तो हम ही यहाँ से चले जायँगे। हम कोई कैदी नही है, जो तुम घेरे खडे हो।

सिपाही—चले क्या जाइयेगा, मजाल है।

मोटे०—मजाल क्यो नही है बे! कोई जुर्म किया है ?

सिपाही—अच्छा जाओ तो; देखें!

पडितजी ब्रह्म-तेज में आकर उठे, और एक सिपाही को इतनी जोर से धक्का दिया, कि वह कई कदम पर जा गिरा। दूसरे सिपाहियो की हिम्मत छूट गई। पडितजी को उन सबने थलथल समझ लिया था, उनका पराक्रम देखा, तो चुपके से सटक गये।

मोटेराम—अब लगे इधर-उधर नजरें दौड़ाने, कि कोई खोंचेवाला नजर आ जाय, तो उससे कुछ लें ; किन्तु तुरत ध्यान आ गया; कहीं उसने किसी से कह दिया, तो लोग तालियाँ बजाने लगेंगे। नहीं, ऐसी चतुराई से काम करना चाहिये, कि किसी को कानोकान खबर न हो। ऐसे ही सकटो में तो बुद्धि-बल का परिचय मिलता है। एक क्षण में उन्होंने इस कठिन प्रश्न को हल कर लिया।

दैवयोग से उसी समय एक खोंचेवाला आता दिखाई दिया। ग्यारह बज चुके थे, चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। पडितजी ने बुलाया—खोंचेवाले, ओ खोंचेवाले!

खोंचेवाला—कहिये, क्या दूँ? भूख लग आई न? अन्न-जल छोड़ना साधुओं का काम है, हमारा-आपका काम नहीं है।

पडित—अबे क्या बकता है? यहाँ किसी साधू से कम हैं? चाहे, तो महीनों पड़े रहे, और भूख-प्यास न लगे। तुझे तो केवल इसलिए बुलाया है, जरा अपनी कुप्पी मुझे दे। देखूँ तो, वहाँ क्या रेंग रहा है। मुझे भय होता है, कहीं साँप न हो।

खोंचेवाले ने कुप्पी उतार कर दे दी। पडितजी उसे लेकर इधर-उधर जमीन पर कुछ खोजने लगे। इतने में कुप्पी उनके हाथ से छूटकर गिर पड़ी, और बुझ गई। सारा तेल बह गया। पडितजी ने उसमें एक ठोकर और लगाई, कि बचा-खुचा तेल भी बह जाय।

खोंचेवाला—(कुप्पी को हिलाकर) महाराज, इसमें तो जरा भी तेल नहीं बचा। अब तक चार पैसे का सौदा बेचता, आपने यह खट-राग बढ़ा दिया।

पडित—भैया, हाथ ही तो है, छूट गिरी, तो अब क्या हाथ काट डालूँ? यह लो पैसे, जाकर कहीं से तेल भरा लाओ।

खोंचेवाला—(पैसे लेकर) तो अब तेल भराकर मैं यहाँ थोडे ही आऊँगा।

पडित—खोंचा रखे जाओ, लपककर थोडा तेल ले लो, नहीं मुझे कोई साँप काट लेगा, तो तुम्हीं पर हत्या पडेगी। कोई जानवर है जरूर। देखो, वह रेंगता है। गायब हो गया। दौड़ जाओ पट्ठे, तेल लेते आओ, मैं तुम्हारा खोंचा देखता रहूँगा। डरते हो, तो अपने रुपए पैसे लेते जाओ।

खोंचेवाला बडे धर्म-संकट में पड़ा। खोंचे से पैसे निकालता है, तो भय है, कि पंडितजी अपने दिल में बुरा मानें, कि मुझे बेईमान समझ रहा है। छोडकर जाता है, तो कौन जाने, इनकी नीयत क्या हो। किसी की नीयत सदा ठीक नहीं रहती। अन्त को उसने यही निश्चय किया कि खोंचा यहीं छोड दूँ, जो कुछ तक़दीर में होगा, वह होगा। वह उधर बाजार की तरफ चला, इधर पडितजी ने खोंचे पर निगाह दौडाई, तो

बहुत हताश हुए। मिठाई बहुत कम बच रही थी। पाँच-छः चीजें थी, मगर किसी में दो अदद से ज्यादा निकलने की गुंजाइश न थी। भंडा फूट जाने का खटका था। पंडितजी ने सोचा, इतने से क्या होगा? केवल क्षुधा और प्रबल हो जायगी, शेर के मुँह खून लग जायगा! गुनाह बेलज्जत है। अपनी जगह पर आ बैठे; लेकिन दम भर के बाद प्यास ने फिर जोर किया। सोचे, कुछ तो ढारस हो ही जायगा। आहार कितना ही सूक्ष्म हो, फिर भी आहार ही है। उठे, मिठाई निकाली; पर पहला ही लड्डू मुँह में रखा था, कि देखा खोंचेवाला तेल की कुप्पी जलाये कदम बढ़ाता चला आ रहा है। उसके पहुँचने के पहले मिठाई का समाप्त हो जाना अनिवार्य था। एक साथ दो चीजें मुँह मे रखीं। अभी चबला ही रहे थे, कि वह निशाचर दस कदम और आगे बढ आया। एक साथ चार चीजे मुँह मे डाली और अध-कुचली ही निगल गये। अभी छः अदतें और थीं, और खोंचेवाला फाटक तक आ चुका था। सारी-की-सारी मिठाई मुँह मे डाल ली। अब न चबाते बनता है, न उगलते। वह शैतान मोटरकार की तरह कुप्पी चमकता हुआ चला ही आता था। जब वह बिलकुल सामने आ गया, तो पंडितजी ने जल्दी से सारी मिठाई निगल ली, मगर आखिर आदमी ही थे, कोई मगर तो थे नहीं, आँखो मे पानी भर आया, गला फँस गया, शरीर मे रोमांच हो आया, जोर से खाँसने लगे। खोंचेवाले ने तेल की कुप्पी बढ़ाते हुये कहा—यह लीजिये, देख लीजिये, चले तो है आप उपवास करने; पर प्राणों का इतना डर है। आपको क्या चिन्ता, प्राण भी निकल जायँगे, तो सरकार बाल-बच्चों की परवस्ती करेगी।

पंडितजी को क्रोध तो ऐसा आया, कि इस पाजी को खोटी-खरी सुनाऊँ; लेकिन गले से आवाज न निकली। कुप्पी चुपके से ले ली, और झूठ-मूठ इधर-उधर देखकर लौटा दी।

खोंचावाला—आपको क्या पड़ी थी, जो चले सरकार का पच्छ करने? कहीं कल दिन-भर पंचायत होगी, तो रात तक कुछ तय होगा। तब तक को आपकी आँखो में तितलियाँ उड़ने लगेंगी।

यह कह कर वह चला गया और पडितजी भी थोड़ी देर तक खाँसने के बाद सो रहे।

(५)

दूसरे दिन सवेरे ही से व्यापारियो ने मिस्कौट करनी शुरू की। उधर कांग्रेसवालों मे भी हलचल मची। अमन-सभा के अधिकारियो ने भी कान खडे किये। यह तो इन भोले-भाले बनियो को धमकाने की अच्छी तरकीब हाथ आई। पडित-समाज ने अलग एक सभा की, और उसमे यह निश्चय किया, कि पडित मोटेराम को राजनीतिक मामलो में पडने का कोई अधिकार नही है। हमारा राजनीति से क्या सबन्ध? ग़रज सारा दिन इसी वाद-विवाद में कट गया और किसी ने पडितजी की खबर न ली। लोग खुल्लम-खुल्ला कहते थे, कि पडितजी ने एक हजार रुपए सरकार से लेकर यह अनुष्ठान किया है। बेचारे पडितजी ने रात तो लोट-पोटकर काटी, पर उठे तो शरीर मुरदा-सा जान पड़ता था। खडे होते थे, तो आँखें तिलमिलाने लगती थीं, सिर में चक्कर आ जाता था। पेट मे जैसे कोई बैठा हुआ कुरेद रहा हो! सडक की तरफ आँखे लगी हुई थीं, कि लोग मनाने तो नही आ रहे है। सन्ध्योपासन का समय इसी परीक्षा मे कट गया। इस समय पूजन के पश्चात् नित्य नाश्ता किया करते थे। आज अभी मुँह मे पानी भी न गया था। न जाने वह शुभ घडी कब आवेगी। फिर पडिताइन पर क्रोध आने लगा। आप तो रात को भर-पेट खाकर सोई होगी, इस वक्त भी जल-पान कर चुकी होगी, पर इधर भूलकर भी न झाँका, कि मरे या जीते हैं। कुछ बात करने ही के बहाने से क्या थोड़ा-सा मोहनभोग बनाकर न ला सकती थी? पर किसे इतनी चिंता है? पर रुपए लेकर रख लिये, फिर जो कुछ मिलेगा, वह भी रख लेगी। मुझे अच्छा उल्लू बनाया?

किस्सा कोताह, पडितजी ने दिन-भर इन्तजार किया; पर कोई मनानेवाला नजर न आया। लोगों के दिल में यह सन्देह पैदा हुआ था, कि पंडितजी ने कुछ ले-देकर यह स्वाँग रचा है, स्वार्थ के वशीभूत होकर यह पाखण्ड खड़ा किया, वही उनको मनाने में बाधक होता था।

(६)

रात के नौ बज गये थे। सेठ भोंदूमल ने, जो व्यापारी-समाज के नेता थे, निश्चयात्मक भाव से कहा—मान लिया, पडितजी ने स्वार्थ-वश ही यह अनुष्ठान किया है, पर इससे वह कष्ट तो कम नहीं हो सकता, जो अन्न-जल के बिना प्राणी-मात्र को होता है। यह धर्म-विरुद्ध है, कि एक ब्राह्मण हमारे ऊपर दाना-पानी त्याग दे, और हम पेट भर भरकर चैन की नींद सोवे। अगर उन्होने धर्म के विरुद्ध आचरण किया है, तो उसका दण्ड उन्हे भोगना पडेगा। हम क्यों अपने कर्तव्य से मुँह फेरें?

काग्रेस के मत्री ने दबी हुई आवाज से कहा—मुझे तो जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। आप लोग समाज के नेता है, जो फैसला कीजिये, हमे मजूर है! चलिये, मैं भी आप के साथ चला चलूँगा। धर्म का कुछ अश मुझे भी मिल जायगा, पर एक विनती सुन लीजिये। आप लोग पहले मुझे वहाँ जाने दीजिये। मैं एकान्त मे उनसे दस मिनट बातें करना चाहता हूँ। आप लोग फाटक पर खडे रहिएगा। जब मैं वहाँ से लौट आऊँ, तो फिर जाइयेगा। इसमे किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी? प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

मत्रीजी पुलिस-विभाग मे बहुत दिनो तक रह चुके थे, मानव-चरित्र की कमजोरियों को जानते थे। वह सीधे बाजार गये, और पाँच रुपए की मिठाई ली। उसमे मात्रा से अधिक सुगन्ध डालने का प्रयत्न किया, चाँदी के वरक लगवाये और एक दोना में लेकर रूठे हुए ब्रह्मदेव की पूजा करने चले। एक झझर मे ठण्डा पानी लिया और उसमे केवडे का जल मिलाया। दोनो ही चीजों से खुशबू की लपटें उड़ रही थीं। सुगन्ध मे कितनी उत्तेजक शक्ति है, कौन नहीं जानता! इससे बिना भूख-की-भूख लग जाती है, भूखे आदमी की तो बात ही क्या?

पडितजी इस समय भूमि पर अचेत पडे हुए थे। रात को कुछ नहीं मिला। दस-पाँच छोटी-मोटी मिठाइयों का क्या जिक्र। दोपहर को कुछ नहीं मिला और इस वक्त भी भोजन की वेला टल गई थी। भूख में अब आशा की व्याकुलता नहीं, निराशा की शिथिलता थी। सारे अङ्ग ढीले

पड गये थे। यहाँ तक कि आँखें भी न खुलती थीं। उन्हे खोलने की बार-बार चेष्टा करते ; पर वे आप-ही-आप बद हो जातीं। ओठ सूख गये थे। जिन्दगी का कोई चिह्न था, तो बस, उनका धीरे-धीरे कराहना। ऐसा घोर संकट उनके ऊपर कभी न पड़ा था। अजीर्ण की शिकायत तो उन्हे महीने मे दो-चार बार हो जाती थी, जिसे वह हड़ आदि की फकियों से शात कर लिया करते थे ; पर अजीर्णावस्था में ऐसा कभी न हुआ था, कि उन्होंने भोजन छोड़ दिया हो। नगर-वासियों को, अमन-सभा को, सरकार को, ईश्वर को, काग्रेस और धर्मपत्नी को जी भरकर कोस चुके थे। किसी से कोई आशा न थी। अब इतनी शक्ति भी न रही थी, कि स्वय खडे होकर बाजार जा सकें। निश्चय हो गया था, कि आज रात को अवश्य प्राण-पखेरू उड़ जायँगे। जीवन-सूत्र कोई रस्सी तो है नहीं, कि चाहे जितने झटके दो टूटने का नाम न ले।

मत्रीजी ने पुकारा—'शास्त्रीजी !' मोटेराम ने पडे-पड़े आँखें खोल दीं, उनमें ऐसी करुण-वेदना भरी हुई, जैसे किसी बालक के हाथ से कौआ मिठाई छीन ले गया हो।

मत्रीजी ने दोने की मिठाई सामने रख दी, और झज्झर पर कुल्हड़ औधा दिया। इस काम से सुचित होकर बोले—यहाँ कब तक पडे रहियेगा ?

सुगन्ध ने पण्डितजी की इन्द्रियों पर सजीवनी का काम किया। पण्डितजी उठ बैठे, और बोले—देखें कब तक निश्चय होता है।

मन्त्री—यहाँ कुछ निश्चय-विश्चय न होगा। आज दिन-भर पंचायत हुआ की, कुछ तय न हुआ। कल कही शाम को लाट साहब आवेंगे। तब तक तो आपकी न जाने क्या दशा होगी। आपका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया है।

मोटे०—यहीं मरना बदा होगा तो कौन टाल सकता है ? इस दोने मे क़लाक़द है क्या ?

मन्त्री—हाँ, तरह-तरह की मिठाइयाँ है। एक नातेदार के यहाँ बैना भेजने के लिए विशेष रीति से बनवाई है।

मोटे०—जभी इनमे इतनी सुगन्ध है, जरा खोलिये तो।

मन्त्री ने मुसकिराकर दोना खोल दिया, और पंडितजी नेत्रों से मिठाइयाँ खाने लगे। अन्धा आँखें पाकर भी संसार को ऐसे तृष्णा-पूर्ण नेत्रों से न देखेगा। मुँह मे पानी भर आया। मन्त्रीजी ने कहा—आपका व्रत न होता, तो दो-चार मिठाइयाँ आपको चखाता। पाँच रुपए सेर के दाम दिये है।

मोटे०—तब तो बहुत ही श्रेष्ठ होगी। मैंने बहुत दिन हुए, कलाकद नहीं खाया।

मन्त्री—आपने भी तो बैठे-बिठाये झंझट मोल ले लिया। प्राण ही न रहेंगे, तो धन किस काम आवेगा।

मोटे०—क्या करूँ, फँस गया। मैं इतनी मिठाइयों का जलपान कर जाता था। (हाथ से मिठाइयों को टटोलकर) भोला की दूकान की होगी।

मन्त्री—चखिये दो-चार।

मोटे०—क्या चखूँ, धर्म-सकट मे पड़ा हूँ।

मन्त्री—अजी चखिये भी। इस समय जो आनन्द प्राप्त होगा, वह लाख रुपए मे भी नहीं मिल सकता। कोई किसी से कहने जाता है क्या?

मोटे०—मुझे भय किसका है? मै यहाँ दाना-पानी बिना मर रहा हूँ, और किसी को पर्वा ही नही। तो फिर मुझे क्या डर? लाओ इधर दोना बढ़ाओ। जाओ सबसे कह देना शास्त्रीजी ने व्रत तोड़ दिया। भाड़ में जाय बजार और व्यापार! यहाँ किसी की चिन्ता नही। जब किसी मे धर्म नही रहा, तो मैने ही धर्म का ठीका थोड़े उठाया है।

यह कहकर पंडितजी ने दोना अपनी तरफ खींच लिया और लगे बढ-बढ़कर हाथ मारने। यहाँ तक कि एक पल मे आधा दोना समाप्त हो गया। सेठ लोग आकर फाटक पर खडे थे। मन्त्री ने जाकर कहा—ज़रा चलकर तमाशा देखिये। आप लोगों को न बाजार खोलना

पडेगा, न खुशामद करनी पड़ेगी। मैंने सारी समस्याएँ हल कर दीं। यह कांग्रेस का प्रताप है।

चाँदनी छिटकी हुई थी। लोगों ने आकर देखा, पंडितजी मिठाई ठिकाने लगाने मे वैसे ही तन्मय हो रहे हैं, जैसे कोई महात्मा समाधि में मग्न हो।

भोंदूमल ने कहा—पंडितजी के चरण छूता हूँ। हम लोग तो आ रहे थे, आपने क्यों जल्दी की? ऐसा जुगत बताते, कि आपकी प्रतिज्ञा भी न टूटती और कार्य भी सिद्ध हो जाता।

मोटे०—मेरा काम सिद्ध हो गया। यह अलौकिक आनन्द है, जो धन के ढेरों से नहीं प्राप्त हो सकता। अगर कुछ श्रद्धा हो, तो इसी दूकान की इतनी ही मिठाई और मँगवा दो। *

---

* हम यह कहना भूल गये, कि मंत्रीजी को मिठाई लेकर मैदान मे आते समय पुलिस के सिपाही को चार आने देने पडे थे। यह नियम विरुद्ध था, लेकिन मंत्रीजी ने इस बात पर अड़ना [illegible]त न समझा।—लेखक

गृह-दाह

सत्यप्रकाश के जन्मोत्सव में लाला देवप्रकाश ने बहुत रुपए खर्च किये थे। उसका विद्यारंभ-संस्कार भी खूब धूम-धाम से किया गया। उसके हवा खाने को एक छोटी-सी गाड़ी थी। शाम को नौकर उसे टहलाने ले जाता, एक नौकर उसे पाठशाला पहुँचाने जाता; दिन-भर वहीं बैठा रहता और उसे साथ लेकर घर आता था। कितना सुशील, होनहार बालक था! गोरा मुखडा, बडी-बड़ी आँखें, ऊँचा मस्तक, पतले-पतले लाल अधर, भरे हुए हाथ-पाँव। उसे देखकर सहसा मुँह से निकल पड़ता था—भगवान् इसे जिला दे, प्रतापी मनुष्य होगा। उसकी बाल-बुद्धि की प्रखरता पर लोगों को आश्चर्य होता था। नित्य उसके मुख-चन्द्र पर हँसी खेलती रहती थी। किसी ने उसे हठ करते या रोते नहीं देखा।

वर्षा के दिन थे। देवप्रकाश स्त्री को लेकर गगा-स्नान करने गये। नदी खूब चढ़ी हुई थी, मानो अनाथ की आँखें हों। उनकी पत्नी निर्मला जल में बैठकर क्रीडा करने लगी। कभी आगे जाती, कभी पीछे जाती, कभी डुबकी मारती, कभी अँजुलियों से छींटे उडाती। देवप्रकाश ने कहा—अच्छा, अब निकलो, नहीं तो सरदी हो जायगी। निर्मला ने कहा—कहो, तो मैं छाती तक पानी में चली जाऊँ।

देवप्रकाश—और, जो कहीं पैर फिसल जाय!

निर्मला—पैर क्यों फिसलेगा!

यह कहकर वह छाती तक पानी मे चली गई। पति ने कहा—अच्छा, अब आगे पैर न रखना; किन्तु निर्मला के सिर पर मौत खेल रही थी। यह जल-क्रीड़ा नहीं—मृत्यु-क्रीड़ा थी। उसने एक पग और आगे बढ़ाया, और फिसल गई। मुँह से एक चीख निकली, दोनो हाथ सहारे के लिए ऊपर उठे, और फिर जल-मग्न हो गये। एक पल में प्यासी

नदी उसे पी गई । देवप्रकाश खडे तौलिए से देह पोंछ रहे थे । तुरन्त पानी में कूदे, साथ का कहार भी कूदा । दो मल्लाह भी कूद पड़े । सबने डुबकियाँ मारीं, टटोला ; पर निर्मला का पता न चला । तब डोंगी मँगवाई गई । मल्लाहों ने बार बार गोते मारे ; पर लाश हाथ न आई । देवप्रकाश शोक में डूबे हुए घर आये । सत्यप्रकाश किसी उपहार की आशा में दौडा । पिता ने गोद में उठा लिया, और बडे यत्न करने पर भी अपनी सिसकी न रोक सके । सत्यप्रकाश ने पूछा—अम्माँ कहाँ हैं ?

देव०—बेटा, गंगा ने उन्हे नेवता खाने के लिए रोक लिया ।

सत्यप्रकाश ने उनके मुख की ओर जिज्ञासा-भाव से देखा, और आशय समझ गया—अम्मा, अम्मा कहकर, रोने लगा ।

(२)

मातृहीन बालक ससार का सबसे करुणाजनक प्राणी है । दीन-से-दीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उनके हृदय को सँभालता रहता है । मातृ हीन बालक इस आधार से भी वंचित होता है । माता ही उनके जीवन का एक-मात्र आधार होती है । माता के बिना वह पख-हीन पक्षी है ।

सत्यप्रकाश को एकान्त से प्रेम हो गया । अकेले बैठा रहता । वृक्षों मे उसे उस सहानुभूति का कुछ-कुछ अज्ञात अनुभव होता था, जो घर के प्राणियो में उसे न मिलती थी । माता का प्रेम था, तो सभी प्रेम करते थे ; माता का प्रेम उठ गया, तो सभी निष्ठुर हो गये । पिता की आँखों में वह प्रेम-ज्योति न रही । दरिद्र को कौन भिक्षा देता है ?

छः महीने बीत गये । सहसा एक दिन उसे मालूम हुआ, मेरी नई माता आनेवाली है । दौड़ा हुआ पिता के पास गया और पूछा—क्या मेरी नई माता आवेंगी ? पिता ने कहा—हॉ, बेटा, वह आकर तुम्हे प्यार करेंगी ।

सत्य०—क्या मेरी माँ स्वर्ग से आ जायँगी ?

देव०—हाँ, वही आ जायँगी ।

सत्य०—मुझे उसी तरह प्यार करेंगी ?

देवप्रकाश इसका क्या उत्तर देते ? मगर सत्यप्रकाश उस दिन से प्रसन्न मन रहने लगा। अम्मा आवेंगी ! मुझे गोद में लेकर प्यार करेंगी! अब मैं उन्हे कभी दिक न करूँगा, कभी जिद न करूँगा, अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाया करूँगा।

विवाह के दिन आये। घर मे तैयारियाँ होने लगी। सत्यप्रकाश खुशी से फूला न समाता। मेरी नई अम्मा आवेंगी। बारात मे वह भी गया। नये-नये कपडे मिले। पालकी पर बैठा। नानी ने अन्दर बुलाया, और उसे गोद मे लेकर एक अशरफी दी। वहीं उसे नई माता के दर्शन हुए। नानी ने नई माता से कहा—बेटी, कैसा सुन्दर बालक है ! इसे प्यार करना।

सत्यप्रकाश ने नई माता को देखा, और मुग्ध हो गया। बच्चे भी रूप के उपासक होते हैं। एक लावण्यमयी मूर्ति आभूषणों से लदी सामने खड़ी थी। उसने दोनो हाथों से उसका अञ्चल पकड़कर कहा—'अम्मा!'

(कितना अरुचिकर शब्द था, कितना लज्जा-युक्त, कितना अप्रिय ! वह ललना, जो 'देवप्रिया' नाम से सबोधित होती थी, उत्तरदायित्व, त्याग और क्षमा का सबोधन न सह सकी। अभी वह प्रेम और विलास का सुख स्वप्न देख रही थी—यौवनकाल की मदमय वायु तरगों मे आदोलित हो रही थी। इस शब्द ने उसके स्वप्न को भग कर दिया। कुछ रुष्ट होकर बोली—मुझे अम्मा मत कहो।

सत्यप्रकाश ने विस्मित नेत्रो से देखा। उसका बाल-स्वप्न भग हो गया। आँखें डबडबा गईं। नानी ने कहा—बेटी, देखो लड़के का दिल छोटा हो गया। वह क्या जाने, क्या कहना चाहिये। अम्मा कह दिया, तो तुम्हे कौन-सी चोट लग गई ?

देवप्रिया ने कहा—मुझे अम्मा न कहे।

(२)

[illegible] का पुत्र विमाता की आँखो में क्यो इतना खटकता है, इसका निर्णय आज तक किसी मनोभाव के पण्डित ने नहीं किया। हम किस गिनती में हैं। देवप्रिया जब तक गर्भिणी न हुई थी, वह सत्यप्रकाश से

कभी-कभी बातें करती, कहानियाँ सुनाती। किन्तु गर्भिणी होते ही उसका व्यवहार कठोर हो गया। प्रसव-काल ज्यों-ज्यों निकट आता था, उसकी कठोरता बढ़ती ही जाती थी। जिस दिन उसकी गोद में एक चाँद-से बच्चे का आगमन हुआ, सत्यप्रकाश खूब उछला-कूदा और सौर गृह में दौड़ा हुआ बच्चे को देखने गया। बच्चा देवप्रिया की गोद में सो रहा था। सत्यप्रकाश ने बड़ी उत्सुकता से बच्चे को विमाता की गोद से उठाना चाहा। सहसा देवप्रिया ने सरोष-स्वर मे कहा—खबरदार, इसे मत छूना, नहीं तो कान पकड़कर उखाड़ लूँगी।

बालक उलटे पाँव लौट आया और कोठे की छत पर जाकर खूब रोया। कितना सुन्दर बच्चा है! मैं उसे गोद में लेकर बैठता, तो कैसा मजा आता! मैं उसे गिराता थोड़े ही, फिर इन्होंने मुझे झिड़क क्यों दिया? (भोला बालक क्या जानता था, कि इस झिड़की का कारण माता की सावधानी नहीं, कुछ और है)।

शिशु का नाम ज्ञानप्रकाश रखा गया था। एक दिन वह सो रहा था। देवप्रिया स्नानागार में थी। सत्यप्रकाश चुपके से आया और बच्चे का ओढ़ना हटाकर उसे अनुरागमय नेत्रों से देखने लगा। उसका जी कितना चाहा, कि उसे गोद में लेकर प्यार करूँ, पर डर के मारे उसने उसे उठाया नहीं, केवल उसके कपोलो को चूमने लगा। इतने में देवप्रिया निकल आई। सत्यप्रकाश को बच्चे चूमते देखकर आग हो गई। दूर ही से डाँटा—'हट जा वहाँ से!'

सत्यप्रकाश दीन नेत्रों से माता को देखता हुआ बाहर निकल आया।

संध्या-समय उसके पिता ने पूछा—तुम लल्ला को क्यों रुलाया करते हो?

सत्य०—मैं तो उसे कभी नहीं रुलाता। अम्मा खेलाने को नहीं देतीं।

देव०—झूठ बोलते हो, आज तुमने बच्चे को चुटकी काटी?

सत्य०—जी नहीं, मैं तो उसकी मुच्छियाँ ले रहा था।

देव०—झूठ बोलता है!

सत्य०—मैं झूठ नहीं बोलता।

देवप्रकाश को क्रोध आ गया। लड़के को दो-तीन तमाचे लगाये। पहली बार यह ताड़ना मिली और निरपराध! इसने उसके जीवन की काया-पलट कर दी।

(४)

उस दिन सत्यप्रकाश के स्वभाव मे एक विचित्र परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह घर में बहुत कम आता, पिता आते, तो उनसे मुँह छिपाता फिरता। कोई खाना खाने को बुलाने आते, तो चोरो की भाँति दबकता हुआ जाकर खा लेता, न कुछ माँगता, न कुछ बोलता। पहले अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि था। उसकी सफाई, और सलीके और फुरती पर लोग मुग्ध हो जाते थे। अब वह पढ़ने से जी चुराता, मैले-कुचैले कपड़े पहने रहता। घर मे कोई प्रेम करनेवाला न था। बाज़ार के लड़कों के साथ गली-गली घूमता, कनकौए लूटता। गालियाँ बकना भी सीख गया। शरीर दुर्बल हो गया। चेहरे की कांति गायब हो गई। देवप्रकाश को अब आये-दिन उसकी शरारतों के उलहने मिलने लगे, और सत्यप्रकाश नित्य घुड़कियाँ और तमाचे खाने लगा। यहाँ तक कि अगर वह कभी घर में किसी काम से चला जाता, तो सब लोग दूर-दूर कहकर दौड़ते।

ज्ञानप्रकाश को पढ़ाने के लिए मास्टर आता था। देवप्रकाश उसे रोज सैर कराने साथ ले जाते। हँसमुँख लड़का था। देवप्रिया उसे सत्यप्रकाश के साए से भी बचाती रहती थी। दोनो लड़कों में कितना अंतर था! एक साफ-सुथरा, सुन्दर कपड़े पहने, शील और विनय का पुतला, सच बोलनेवाला। देखनेवालो के मुँह से अनायास ही दुआ निकल आती थी। दूसरा मैला, नटखट, चोरो की तरह मुँह छिपाये हुए, मुँहफट बात-बात पर गालियाँ बकनेवाला। एक हरा-भरा पौदा, प्रेम मे प्लावित, स्नेह से सिंचित। दूसरा सूखा हुआ, टेढ़ा, पल्लवहीन नव वृक्ष, जिसकी जड़ो को एक मुद्दत से पानी नहीं नसीब हुआ। एक को देखकर पिता की छाती ठंढी होती, दूसरे को देखकर देह मे आग लग जाती।

आश्चर्य यह था, कि सत्यप्रकाश को अपने छोटे भाई से लेशमात्र

भी ईर्ष्या न थी। अगर उसके हृदय में कोई कोमल भाव शेष रह गया था, तो वह ज्ञानप्रकाश के प्रति स्नेह था। उस मरुभूमि में यही एक हरियाली थी। ईर्ष्या साम्य-भाव की द्योतक है। सत्यप्रकाश अपने भाई को अपने से कहीं ऊँचा, कहीं भाग्यशाली समझता। उसमें ईर्ष्या का भाव ही लोप हो गया था।

घृणा से घृणा उत्पन्न होती है; प्रेम से प्रेम। ज्ञानप्रकाश भी बड़े भाई को चाहता था। कभी-कभी उसका पक्ष लेकर अपनी माँ से वाद-विवाद कर बैठता। कहता, भैया की अचकन फट गई है; आप नई अचकन क्यों नहीं बनवा देतीं? माँ उत्तर देती—उसके लिए वही अचकन अच्छी है। अभी क्या, अभी तो वह नंगा फिरेगा। ज्ञानप्रकाश बहुत चाहता था, कि अपने जेब-खर्च से बचाकर कुछ अपने भाई को दे, पर सत्यप्रकाश कभी इसे स्वीकार न करता। वास्तव में जितनी देर वह छोटे भाई के साथ रहता, उतनी देर उसे एक शान्तिमय आनन्द का अनुभव होता। थोड़ी देर के लिए वह सद्भावों के साम्राज्य में विचरने लगता। उसके मुख से कोई भद्दी और अप्रिय बात न निकलती। एक क्षण के लिए उसकी सोई हुई आत्मा जाग उठती।

एक बार कई दिन तक सत्यप्रकाश मदरसे न गया। पिता ने पूछा—तुम आजकल पढ़ने क्यों नहीं जाते? क्या सोच रखा है, कि मैंने तुम्हारी जिंदगी-भर का ठेका ले रखा है?

सत्य०—मेरे उपर जुर्माने और फीस के कई रुपए हो गये हैं। जाता हूँ, तो दरजे से निकाल दिया जाता हूँ।

देव०—फीस क्यों बाकी है? तुम तो महीने-महीने ले लिया करते हो न?

सत्य०—आये-दिन चन्दे लगा करते हैं। फीस के रुपए चन्दे में दे दिये।

देव०—और जुर्माना क्यों हुआ?

सत्य०—फीस न देने के कारण।

देव०—तुमने चंदा क्यों दिया?

सत्य०—ज्ञानू ने चन्दा दिया, तो मैंने भी दिया।

देव०—तुम ज्ञानू से जलते हो?

सत्य०—मैं ज्ञानू से क्यों जलने लगा? यहाँ हम और वह दो हैं, बाहर हम और वह एक समझे जाते हैं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मेरे पास कुछ नहीं है।

देव०—क्यों, यह कहते शर्म आती है?

सत्य०—जी हाँ, आपकी बदनामी होगी।

देव०—अच्छा तो आप मेरी मान-रक्षा करते हैं। यह क्यों नहीं कहते, कि पढ़ना अब मजूर नहीं है। मेरे पास इतना रुपया नहीं कि तुम्हें एक-एक क्लास मे तीन-तीन साल पढाऊॅ; ऊपर से तुम्हारे खर्च के लिए भी प्रतिमास कुछ दूॅ। ज्ञानबाबू तुमसे कितना छोटा है, लेकिन तुमसे एक ही दफा नीचा है। तुम इस साल जरूर ही फेल होगे, वह जरूर ही पास होगा। अगले साल तुम्हारे साथ हो जायगा। तब तो तुम्हारे मुॅह मे कालिख लगेगी न?

सत्य०—विद्या मेरे भाग्य ही में नहीं है।

देव०—तुम्हारे भाग्य में क्या है?

सत्य०—भीख माॅगना।

देव०—तो फिर भीख ही माॅगो। मेरे घर से निकल जाओ। देवप्रिया भी आ गई। बोली—शरमाता तो नहीं और बातों का जवाब देता है।

सत्य०—जिनके भाग्य में भीख माॅगना होता है, वे ही बचपन में अनाथ हो जाते है।

देवप्रिया—ये जली-कटी बाते अब मुझसे न सही जायॅगी। मैं खून का घूट पी-पीकर रह जाती हूॅ।

देवप्रकाश—बेहया है। कल से इसका नाम कटवा दूॅगा। भीख माँगनी है, तो भीख ही माॅगे।

(५)

दूसरे दिन सत्यप्रकाश ने घर से निकलने की तैयारी कर दी। उसकी उम्र अब सोलह साल की हो गई थी। इतनी बातें सुनने के बाद

उसे घर मे रहना असह्य हो गया था। जब तक हाथ-पाँव न थे, किशोरावस्था की असमर्थता थी, तब तक अवहेलना, निरादर, निठुरता, भर्त्सना सब कुछ सहकर घर मे रहता रहा। अब हाथ-पाँव हो गये थे, उस बन्धन मे क्यो रहता! आत्माभिमान आशा की भाँति चिरजीवी होता है।

गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय। घर के सब प्राणी सो रहे थे। सत्यप्रकाश ने अपनी धोती बगल में दबाई; एक छोटा-सा बेग हाथ मे लिया और चाहता था, कि चुपके से बैठके से निकल जाय, कि ज्ञानू आ गया, और उसे जाने को तैयार देख बोला—कहाँ जाते हो, भैया?

सत्य०—जाता हूँ, कहीं नौकरी करूँगा।

ज्ञानू—मैं जाकर अम्मा से कहे देता हूँ।

सत्य०—तो फिर मैं तुम से भी छिपाकर चला जाऊँगा।

ज्ञानू—क्यो चले जाओगे? तुम्हे मेरी जरा भी मुहब्बत नहीं?

सत्यप्रकाश ने भाई को गले लगाकर कहा—तुम्हे छोड़कर जाने को जी तो नहीं चाहता, लेकिन जहाँ कोई पूछनेवाला नहीं है, वहाँ पड़े रहना बेहयाई है। कही दस-पाँच की नौकरी कर लूँगा, और पेट पालता रहूँगा, किस लायक़ हूँ?

ज्ञानू—तुमसे अम्मा क्यो इतना चिढ़ती हैं? मुझे तुमसे मिलने को मना किया करती है!

सत्य०—मेरे नसीब खोटे हैं और क्या।

ज्ञानू—तुम लिखने-पढने में जी नहीं लगाते?

सत्य०—लगता ही नहीं, कैसे लगाऊँ? जब कोई परवा नहीं करता, तो मैं भी सोचता हूँ—उँह, यही न होगा, ठोकर खाऊँगा। बला से!

ज्ञानू—मुझे भूल तो नहीं जाओगे? मैं तुम्हारे पास खत लिखा करूँगा। मुझे भी एक बार अपने यहाँ बुलाना।

सत्य०—तुम्हारे स्कूल के पते से चिट्ठी लिखूँगा।

ज्ञानू—(रोते-रोते) मुझे न जाने क्यों तुम्हारी बड़ी मुहब्बत लगती है!

सत्य०—मैं तुम्हें सदैव याद रखूँगा।

यह कहकर उसने फिर भाई को गले से लगाया, और घर से निकल पड़ा। पास एक कौड़ी न थी, और वह कलकत्ते जा रहा था!

(६)

सत्यप्रकाश कलकत्ते क्योंकर पहुँचा, इसका वृत्तांत लिखना व्यर्थ है। युवकों में दुस्साहस की मात्रा अधिक होती है। वे हवा के किले बना सकते हैं—धरती पर नाव चला सकते हैं। कठिनाइयों की उन्हें कुछ परवा नहीं होती। अपने ऊपर असीम विश्वास होता है। कलकत्ते पहुँचना ऐसा कष्ट-साध्य न था। सत्यप्रकाश चतुर युवक था। पहले ही उसने निश्चय कर लिया था, कि कलकत्ते में क्या करूँगा, कहाँ रहूँगा। उसके बेग में लिखने की सामग्री मौजूद थी। बड़े शहरों में जीविका का प्रश्न कठिन भी है, और सरल भी। सरल है उनके लिए, जो हाथ से काम कर सकते है, कठिन है उनके लिये जो कलम से काम करते हैं। सत्यप्रकाश मज़दूरी करना नीच काम समझता था। उसने धर्मशाला में असबाब रखा, बाद को शहर के मुख्य-मुख्य स्थानों का निरीक्षण कर एक डाक घर के सामने लिखने का सामान लेकर बैठ गया, और अपढ मजदूरों की चिट्ठियाँ, मनीआर्डर आदि लिखने का व्यवसाय करने लगा। पहले कई दिन तो उसको इतने पैसे न मिले, कि पेट-भर भोजन करता, लेकिन धीरे-धीरे आमदनी बढने लगी। वह मज़दूरों से इतने विनय के साथ बातें करता और उनके समाचार इतने विस्तार से लिखता, कि बस, वे पत्र को सुनकर बहुत प्रसन्न होते। अशिक्षित लोग एक ही बात को दो-दो तीन-तीन बार लिखाते है। उनकी दशा ठीक उन रोगियों की-सी होती है, जो वैद्य से अपनी व्यथा और वेदना का वृत्तान्त कहते नहीं थकते। सत्यप्रकाश सूत्र को व्याख्या का रूप देकर मज़दूरों को मुग्ध कर देता था। एक संतुष्ट होकर जाता, तो अपने कई अन्य भाइयों को खोज लाता। एक ही महीने में उसे एक रुपया रोज मिलने लगा। उसने धर्मशाला से निकलकर शहर से बाहर पाँच रुपए महीने पर एक छोटी-सी कोठरी ले ली एक वक्त बनाता, दोनों वक्त खाता। बर्तन अपने हाथों से धोता। ज़मीन

पर सोता। उसे अपने निर्वासन पर ज़रा भी खेद और दुःख न था। घर के लोगों की कभी याद न आती। वह अपनी दशा पर सन्तुष्ट था। केवल ज्ञानप्रकाश की प्रेमयुक्त बातें न भूलतीं। अंधकार में यही एक प्रकाश था। विदाई का अन्तिम दृश्य आँखों के सामने फिरा करता। जीविका से निश्चिन्त होकर उसने ज्ञानप्रकाश को एक पत्र लिखा। उत्तर आया। उसके आनन्द की सीमा न रही। ज्ञानू मुझे याद करके रोता है, मेरे पास आना चाहता है, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। प्यासे को पानी से जो तृप्ति होती है, वह तृप्ति उस पत्र से सत्यप्रकाश को हुई। मैं अकेला नहीं हूँ, कोई मुझे भी चाहता है—मुझे भी याद करता है।

उस दिन से सत्यप्रकाश को यह चिन्ता हुई कि ज्ञानू के लिए कोई उपहार भेजूँ। युवकों को मित्र बहुत जल्द मिल जाते हैं। सत्यप्रकाश की भी कई युवकों से मित्रता हो गई थी। उनके साथ कई बार सिनेमा देखने गया। कई बार बूटी-भंग, शराब-कबाब की भी ठहरी। आईना, तेल, कंघी का शौक भी पैदा हुआ, जो कुछ पाता उड़ा देता; बड़े वेग से नैतिक पतन और शारीरिक विनाश की ओर दौड़ा चला जाता था। इस प्रेम पत्र ने उसके पैर पकड़ लिये। उपहार के प्रयास ने इन दुर्व्यसनों को तिरोहित करना शुरू किया। सिनेमा का चसका छूटा, मित्रों को हीले-हवाले करके टालने लगा। भोजन भी रूखा-सूखा करने लगा। धन-संचय की चिंता ने सारी इच्छाओं को परास्त कर दिया। उसने निश्चय किया, कि एक अच्छी सी घड़ी भेजूँ। उसका दाम कम-से-कम चालीस रुपया होगा, अगर तीन महीने तक एक कौड़ी का भी अपव्यय न करूँ, तो घडी मिल सकती है। ज्ञानू घडी देखकर कैसा खुश होगा। अम्मा और बाबूजी भी देखेंगे। उन्हें मालूम हो जायगा, कि मैं भूखों नहीं मर रहा हूँ। किफायत की धुन में वह बहुधा दिया-बत्ती भी न करता। बडे सवेरे काम करने चला जाता, और सारे दिन दो-चार पैसे की मिठाई खाकर काम करता रहता। उसके ग्राहकों की संख्या दिन दूनी होती जाती थी। चिट्ठी-पत्री के अतिरिक्त अब उसने तार लिखने का भी अभ्यास कर लिया था। दो ही महीनों में उसके पास पचास रुपए एकत्र हो गये;

और जब घड़ी के साथ सुनहरी चेन का पारसल बनाकर ज्ञानू के नाम भेज दिया, तो उसका चित्त इतना उत्साहित था, मानो किसी निस्सतान के बालक हुआ हो।

(७)

'घर' कितनी ही कोमल, पवित्र, मनोहर स्मृतियों को जागृत कर देता है! यह प्रेम का निवास स्थान है। प्रेम ने बहुत तपस्या करके यह वरदान पाया है।

किशोरावस्था में 'घर' माता-पिता, भाई-बहन, सखी सहेली के प्रेम की याद दिलाता है, प्रौढावस्था में गृहिणी और बाल बच्चो के प्रेम की यही वह लहर है, जो मानव-जीवन-मात्र को स्थिर रखती है। उसे समुद्र की वेगवती लहरों मे बहने और चट्टानो से टकराने से बचाती है। यही वह मडप है, जो जीवन को समस्त विघ्न-बाधाओ से सुरक्षित रखता है।

सत्यप्रकाश का घर कहाँ था? यह कौन-सी शक्ति थी, जो कलकत्ते के विराट् प्रलोभनो से उसकी रक्षा करती थी?—माता का प्रेम, पिता का स्नेह, बाल-बच्चों की चिता?—नहीं उसका रक्षक, उद्धारक उसका परितोषिक केवल ज्ञानप्रकाश का स्नेह था। उसी के निमित्त वह एक-एक पैसे की किफायत करता—उसी के लिए वह कठिन परिश्रम करता—धनोपार्जन के नये-नये उपाय सोचता। उसे ज्ञानप्रकाश के पत्रों से मालूम हुआ, कि इन दिनों देवप्रकाश की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। वह एक घर बनवा रहे हैं, जिसमे व्यय अनुमान से अधिक हो जाने के कारण ऋण लेना पडा है, इसलिए अब ज्ञानप्रकाश को पढाने के लिए घर पर मास्टर नहीं आता। तब से सत्यप्रकाश प्रतिमास ज्ञानू के पास कुछ-न-कुछ अवश्य भेज देता था। वह अब केवल पत्र-लेखक न था, लिखने के सामान की एक छोटी-सी दूकान भी उसने खोल ली थी। इससे अच्छी आमदनी हो जाती थी। इस तरह पाँच वर्ष बीत गये। रसिक मित्रों ने जब देखा, कि अब यह हत्थे नहीं चढ़ता, तो उसके पास आना-जाना छोड़ दिया।

(८)

सध्या का समय था। देवप्रकाश अपने मकान में बैठे देवप्रिया से ज्ञानप्रकाश के विवाह के सबध में बातें कर रहे थे। ज्ञानू अब सत्रह वर्ष का सुन्दर युवक था। बाल-विवाह के विरोधी होने पर भी देवप्रकाश अब इस शुभ मुहूर्त को न टाल सकते थे। विशेषतः जब कोई महाशय पाँच हजार रुपया दायज देने को प्रस्तुत हों।

देवप्रकाश—मैं तो तैयार हूँ; लेकिन तुम्हारा लड़का भी तो तैयार हो।

देवप्रिया—तुम बातचीत पक्की कर लो, वह तैयार हो ही जायगा। सभी लडके पहले 'नहीं' करते हैं।

देवप्रकाश—ज्ञानू का इनकार केवल सकोच का इनकार नहीं है, यह सिद्धान्त का इनकार है। वह साफ-साफ कह रहा है, कि जब तक भैया का विवाह न होगा, मैं अपना विवाह करने पर राजी नहीं हूँ।

देवप्रिया—उसकी कौन चलावे, वहाँ कोई रखैल रख ली होगी। विवाह क्यों करेगा? वहाँ कोई देखने जाता है!

देवप्रकाश—(झुँझलाकर) रखैल रख ली होती, तो तुम्हारे लडके को चालीस रुपए महीने न भेजता और न वे चीजें ही देता, जिन्हे पहले महीने से अब तक बराबर देता चला आता है। न जाने क्यों तुम्हारा मन उसकी ओर से इतना मैला हो गया है! चाहे वह जान निकालकर भी दे दे, लेकिन तुम न पसीजोगी।

देवप्रिया नाराज होकर चली गई। देवप्रकाश उससे यही कहलाया चाहते थे, कि पहले सत्यप्रकाश का विवाह करना उचित है; किन्तु वह कभी इस प्रसग को आने ही न देती थी। स्वयं देवप्रकाश की यह हार्दिक इच्छा थी, कि पहले बडे लडके का विवाह करें, पर उन्होंने भी आज तक सत्यप्रकाश को कोई पत्र न लिखा था। देवप्रिया के चले जाने के बाद उन्होंने आज पहली बार सत्यप्रकाश को पत्र लिखा। पहले इतने दिनों तक चुपचाप रहने के लिए क्षमा माँगी; तब उसे एक बार घर आने का प्रेमाग्रह किया। लिखा, अब मैं कुछ दिनों का मेहमान हूँ। मेरी

अभिलाषा है, कि तुम्हारा और तुम्हारे छोटे भाई का विवाह देख लूँ। मुझे बहुत दुःख होगा, यदि तुम यह विनय स्वीकार न करोगे। ज्ञान-प्रकाश के असमंजस की बात भी लिखी। अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया, कि किसी और विचार से नहीं, तो ज्ञानू के प्रेम के नाते ही तुम्हे इस बन्धन में पड़ना होगा।

सत्यप्रकाश को यह पत्र मिला, तो उसे बहुत खेद हुआ। मेरे भ्रातृ-स्नेह का यह परिणाम होगा, मुझे न मालूम था। इसके साथ ही उसे यह ईर्ष्यामय आनन्द हुआ, कि अम्मा और दादा को अब तो कुछ मानसिक पीड़ा होगी। मेरी उन्हें क्या चिन्ता थी? मैं मर भी जाऊँ, तो भी उनकी आँखों में आँसू न आवें। सात वर्ष हो गये, कभी भूलकर भी पत्र न लिखा, मरा है या जीता है। अब कुछ चेतावनी मिलेगी। ज्ञानप्रकाश अन्त में विवाह करने पर राजी तो हो जायगा; लेकिन सहज मे नहीं। कुछ न हो, मुझे तो एक बार अपने इनकार के कारण लिखने का अवसर मिला। ज्ञानू को मुझसे प्रेम है; लेकिन उसके कारण मैं पारिवारिक अन्याय का दोषी न बनूँगा। हमारा पारिवारिक जीवन सम्पूर्णतः अन्यायमय है। यह कुमति और वैमनस्य, क्रूरता और नृशंसता का बीजारोपण करता है। इसी माया में फँसकर मनुष्य अपनी प्यारी संतान का शत्रु हो जाता है। न, मैं आँखों देखकर यह जीती मक्खी न निगलूँगा। मैं ज्ञानू को समझाऊँगा अवश्य। मेरे पास जो कुछ जमा है, वह सब उसके विवाह के निमित्त अर्पण भी कर दूँगा। बस, इससे ज्यादा मैं कुछ भी नहीं कर सकता। अगर ज्ञानू भी अविवाहित रहे, तो ससार कौन सूना हो जायगा? ऐसे पिता का पुत्र क्या वश परपरा का पालन न करेगा? क्या उसके जीवन में फिर यही अभिनय न दुहराया जायगा, जिसने मेरा सर्वनाश कर दिया!

दूसरे दिन सत्यप्रकाश ने पाँच सौ रुपए पिता के पास भेजे, और पत्र का उत्तर लिखा, कि मेरा अहोभाग्य, जो आपने मुझे याद किया। ज्ञानू का विवाह निश्चित हो गया, इसकी बधाई! इन रुपयों से नव-बधू के लिए कोई आभूषण बनवा दीजियेगा। रही मेरे विवाह की बात, सो मैंने

अपनी आँखों से जो कुछ देखा और मेरे सिर पर जो कुछ बीती है, उस पर ध्यान देते हुए यदि मैं कुटुम्ब-पाश मे फसूँ, तो मुझसे बड़ा उल्लू ससार में न होगा। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। विवाह की चर्चा ही से मेरे हृदय को आघात पहुँचता है।

दूसरा पत्र ज्ञानप्रकाश को लिखा, कि माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करो। मैं अपढ़, मूर्ख, बुद्धिहीन आदमी हूँ। मुझे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं। मैं तुम्हारे विवाह के शुभोत्सव मे सम्मिलित न हो सकूँगा; लेकिन मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द और सतोष का विषय नहीं हो सकता।

(६)

देवप्रकाश यह पढ़कर अवाक् रह गये। फिर आग्रह करने का साहस न हुआ। देवप्रिया ने नाक सिकोड़कर कहा—यह लौंडा देखने ही को सीधा है, है जहर का बुझाया हुआ! सौ कोस पर बैठा हुआ बर्छियों से कैसा छेद रहा है।

किंतु ज्ञानप्रकाश ने यह पत्र पढ़ा, तो उसे मर्माघात पहुँचा। दादा और अम्मा के अन्याय ने ही उन्हे यह भीषण व्रत धारण करने पर बाध्य किया है। इन्हीं ने उन्हे निर्वासित किया है, और शायद सदा के लिए। न जाने अम्मा को इनसे क्यों इतनी जलन हुई। मुझे तो अब याद आता है, कि किशोरावस्था ही से वह बड़े आज्ञाकारी, विनयशील और गंभीर थे। उन्हे अम्मा की बातों का जवाब देते नहीं सुना। मैं अच्छे-से-अच्छा खाता था, फिर भी, उनके तेवर मैले न हुए, हालाँकि उन्हे जलना चाहिये था। ऐसी दशा मे अगर उन्हे गार्हस्थ्य-जीवन से घृणा हो गई, तो आश्चर्य ही क्या? फिर मैं ही क्यों इस विपत्ति मे फँसूँ? कौन जाने, मुझे भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़े। भैया ने बहुत सोच-समझकर यह धारणा की है।

सध्या-समय जब उसके माता-पिता बैठे हुए उसी समस्या पर विचार कर रहे थे, ज्ञानप्रकाश ने आकर कहा—मैं कल भैया से मिलने जाऊँगा।

देवप्रिया—क्या कलकत्ते जाओगे?

ज्ञान०—जी, हाँ।

देवप्रिया—उन्हीं को क्यो नहीं बुलाते ?

ज्ञान०—उन्हे कौन मुँह लेकर बुलाऊँ ? आप लोगों ने तो पहले ही मेरे मुँह मे कालिख लगा दी है। ऐसा देव-पुरुष आप लोगों के कारण विदेश मे ठोकर खा रहा है, और मैं इतना निर्लज्ज हो जाऊँ कि—

देवप्रिया—अच्छा चुप रह, नहीं व्याह करना है, न कर, जले पर नमक मत छिड़क। माता-पिता का धर्म है ; इसलिए कहती हूँ, नहीं तो यहाँ ठेंगे को परवा नहीं है। तू चाहे व्याह कर, चाहे क्वाँरा रह ; पर मेरी आँखों से दूर हो जा।

ज्ञान०—क्या मेरी सूरत से भी घृणा हो गई ?

देवप्रिया—जब तू हमारे कहने ही में नहीं, तो जहाँ चाहे रह। हम भी समझ लेंगे, कि भगवान् ने लड़का ही नहीं दिया।

देव०—क्यों व्यर्थ ऐसे कटु वचन बोलती हो ?

ज्ञान०—अगर आप लोगों की यह इच्छा है, तो यही होगा।

देवप्रकाश ने देखा, कि बात का बतगड़ हुआ चाहता है, तो ज्ञान-प्रकाश को इशारे से टाल दिया, और पत्नी के क्रोध को शात करने की चेष्टा करने लगे, मगर देवप्रिया फूट-फूटकर रो रही थी, बार-बार कहती थी—मैं इसकी सूरत न देखूँगी। अन्त को देवप्रकाश ने चिढ़कर कहा—तो तुम्हीं ने तो कटु वचन कहकर उसे उत्तेजित कर दिया।

देवप्रिया—यह सब विष उसी चाडाल ने बोया है, जो यहाँ से सात समुद्र पार बैठा हुआ मुझे मिट्टी में मिलाने का उद्योग कर रहा है। मेरे बेटे को मुझसे छीनने ही के लिए उसने यह प्रेम का स्वाँग रचा है। मैं उसकी नस-नस पहचानती हूँ। उसका यह मत्र मेरी जान लेकर छोड़ेगा ; नहीं तो मेरा ज्ञानू, जिसने कभी मेरी बात का जवाब नहीं दिया, यों मुझे न जलाता।

देव०—अरे, तो क्या वह विवाह ही न करेगा ! अभी गुस्से मे अनाप-शनाप बक गया है। जरा शात हो जायगा, तो मैं समझाकर राजी कर दूँगा।

देवप्रिया—मेरे हाथ से निकल गया।

देवप्रिया की आशका सत्य निकली। देवप्रकाश ने बेटे को बहुत समझाया। कहा—तुम्हारी माता इस शोक में मर जायगी, किन्तु कुछ असर न हुआ। उसने एक बार 'नहीं' कहकर 'हाँ' न की। निदान पिता भी निराश होकर बैठ रहे।

तीन साल तक प्रतिवर्ष विवाह के दिनों यह प्रश्न उठता रहा, पर ज्ञानप्रकाश अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था। माता का रोना-धोना निष्फल हुआ। हाँ, उसने माता की एक बात मान ली—वह भाई से मिलने कलकत्ते न गया।

तीन साल मे घर मे बड़ा परिवर्तन हो गया। देवप्रिया की तीनो कन्याओं का विवाह हो गया। अब घर मे उसके सिवा कोई स्त्री न थी। सूना घर उसे खाये लेता था। जब वह नैराश्य और क्रोध से व्याकुल हो जाती, तो सत्यप्रकाश को खूब जी भर कोसती; मगर दोनो भाइयों में प्रेम पत्र व्यवहार बराबर होता रहता था।

देवप्रकाश के स्वभाव मे एक विचित्र उदासीनता प्रकट होने लगी। उन्होंने पेंशन ले ली थी, और प्रायः धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया करते थे। ज्ञानप्रकाश ने भी 'आचार्य' की उपाधि प्राप्त कर ली थी, और एक विद्यालय मे अध्यापक हो गये थे। देवप्रिया अब ससार मे अकेली थी।

देवप्रिया अपने पुत्र को गृहस्थी की ओर खींचने के लिए नित्य टोने-टोटके किया करती। बिरादरी में कौन-सी कन्या सुन्दर है, गुणवती है, सुशिक्षिता है—उनका बखान किया करती, पर ज्ञानप्रकाश को इन बातों के सुनने की भी फुरसत न थी।

मोहल्ले के और घरों मे नित्य ही विवाह होते रहते थे। बहुएँ आती थीं, उनकी गोद में बच्चे खेलने लगते थे, घर गुलजार हो जाता था। कहीं विदाई होती थी, कही बधाइयाँ आती थीं, कहीं गाना-बजाना होता था, कहीं बाजे बजते थे, यह चहल-पहल देखकर देवप्रिया का चित्त चचल हो जाता। उसे मालूम होता, मैं ही ससार मे सबसे अभागिन हूँ। मेरे ही भाग्य मे यह सुख भोगना नहीं बदा। भगवान् ऐसा

पचीस रुपए बच रहते थे। अब दोनो वक्त भोजन मिलने लगा। कपड़े भी जरा साफ पहनने लगा; मगर थोड़े ही दिनों में उसके खर्च में औषधियों की एक मद बढ़ गई। फिर वही पहले की-सी दशा हो गई। बरसों तक शुद्ध वायु, प्रकाश और पुष्टिकर भोजन से वंचित रहकर अच्छे-से अच्छा स्वास्थ्य भी नष्ट हो सकता है। सत्यप्रकाश को अरुचि, मंदाग्नि आदि रोगों ने आ घेरा। कभी कभी ज्वर भी आ जाता। युवावस्था में आत्मविश्वास होता है। किसी अवलम्ब की परवा नहीं होती। वयोवृद्धि दूसरों का मुँह ताकती है, कोई आश्रय ढूँढती है। सत्यप्रकाश पहले सोता, तो एक ही करवट में सवेरा हो जाता। कभी बाजार से पूरियाँ लेकर खा लेता, कभी मिठाई पर टाल देता; पर अब रात को अच्छी तरह नींद न आती, बाजारू भोजन से घृणा होती, रात को घर आता, तो थककर चूर-चूर हो जाता। उस वक्त चूल्हा जलाना, भोजन पकाना बहुत अखरता। कभी-कभी वह अपने अकेलेपन पर रोता। रात को जब किसी तरह नींद न आती, तो उसका मन किसी से बातें करने को लालायित होने लगता; पर वहाँ निशाधकार के सिवा और कौन था? दीवारों के कान चाहे हों, मुँह नहीं होता। इधर ज्ञानप्रकाश के पत्र भी अब कम आते थे, और वे भी रूखे। उनमें अब हृदय के सरल उद्गारों का लेश भी न रहता। सत्यप्रकाश अब भी वैसे ही भावमय पत्र लिखता था; पर एक अध्यापक के लिए भावुकता कब शोभा देती है? शनैः-शनैः सत्यप्रकाश को भ्रम होने लगा, कि ज्ञानप्रकाश भी मुझसे निष्ठुरता करने लगा, नहीं तो क्या मेरे पास दो-चार दिन के लिए आना असम्भव था? मेरे लिए तो घर का द्वार बन्द है; पर उसे कौन-सी बाधा है? उस गरीब को क्या मालूम, कि यहाँ ज्ञानप्रकाश ने माता से कलकत्ते न जाने की कसम खा ली है। इस भ्रम ने उसे और भी हताश कर दिया।

शहरों में मनुष्य बहुत होते हैं, पर मनुष्यता विरले ही में होती है। सत्यप्रकाश उस बहुसंख्यक स्थान में भी अकेला था। उसके मन में अब एक नई आकांक्षा अंकुरित हुई। क्यों न घर लौट चलूँ? किसी संगिनी के प्रेम की क्यों न शरण लूँ? वह सुख और शान्ति और कहाँ

भी कोई दिन आवेगा, कि मैं अपनी बहू का मुख-चन्द्र देखूँगी, बालकों को गोद में खिलाऊँगी ? वह भी कोई दिन होगा, कि मेरे घर में भी आनन्दोत्सव के मधुर गान की तानें उठेंगी ? रात-दिन ये ही बातें सोचते-सोचते देवप्रिया की दशा उन्मादिनी की सी हो गई। आप-ही-आप सत्यप्रकाश को कोसने लगी—वही मेरे प्राणों का घातक है ! तल्लीनता उन्माद का प्रधान गुण है। तल्लीनता अत्यन्त रचनाशील होती है। वह आकाश में देवताओं के विमान उडाने लगती है। अगर भोजन में नमक तेज हो गया, तो यह शत्रु ने कोई रोडा रख दिया होगा। देवप्रिया को अब कभी-कभी धोखा हो जाता, कि सत्यप्रकाश घर मे आ गया है, वह मुझे मारना चाहता है, ज्ञानप्रकाश को विष खिलाये देता है। एक दिन उसनें सत्यप्रकाश के नाम एक पत्र लिखा, और उसमे जितना कोसते बना, कोसा—तू मेरे प्राणों का बैरी है, मेरे कुल का घातक है, हत्यारा है। वह कौन दिन आवेगा, कि मिट्टी उठेगी। तूने मेरे लड़के पर वशीकरण-मत्र चला दिया है। दूसरे दिन फिर ऐसा ही एक पत्र लिखा, यहाँ तक कि यह उसका नित्य का कर्म हो गया। जब तक एक चिट्ठी में सत्यप्रकाश को गालियाँ न दे लेती, उसे चैन ही न आता ! इन पत्रों को वह कहारिन के हाथ डाकघर भिजवा दिया करती थी।

(१०)

ज्ञानप्रकाश का अध्यापक होना सत्यप्रकाश के लिए घातक हो गया। परदेश में उसे यही सतोष हुआ था, कि मैं ससार मे निराधार नहीं हूँ। अब वह अवलम्ब जाता रहा। ज्ञानप्रकाश ने जोर देकर लिखा—अब आप मेरे लिए कोई कष्ट न उठावें। मुझे अपनी गुजर करने के लिए काफी से ज्यादा मिलने लगा है।

यद्यपि सत्यप्रकाश की दूकान खूब चलती थी, लेकिन कलकत्ते-जैसे शहर में एक छोटे-से दूकानदार का जीवन बहुत सुखी नहीं होता। साठ-सत्तर रुपए की मासिक आमदनी होती ही क्या है। अब तक वह जो कुछ बचाता था, वह वास्तव में बचत न थी ; बल्कि त्याग था। एक वक्त रूखा-सूखा खाकर, एक तग सीलन की कोठरी मे रहकर बीस-

पचीस रुपए बच रहते थे। अब दोनो वक्त भोजन मिलने लगा। कपडे भी जरा साफ पहनने लगा; मगर थोडे ही दिनों में उसके खर्च मे औषधियो की एक मद बढ गई। फिर वही पहले की-सी दशा हो गई। बरसों तक शुद्ध वायु, प्रकाश और पुष्टिकर भोजन से वंचित रहकर अच्छे-से अच्छा स्वास्थ्य भी नष्ट हो सकता है। सत्यप्रकाश को अरुचि, मदाग्नि आदि रोगो ने आ घेरा। कभी कभी ज्वर भी आ जाता। युवावस्था में आत्मविश्वास होता है। किसी अवलम्ब की परवा नहीं होती। वयोवृद्धि दूसरों का मुँह ताकती है, कोई आश्रय ढूँढती है। सत्यप्रकाश पहले सोता, तो एक ही करवट में सवेरा हो जाता। कभी बाजार से पूरियाँ लेकर खा लेता, कभी मिठाई पर टाल देता; पर अब रात को अच्छी तरह नींद न आती, बाजारू भोजन से घृणा होती, रात को घर आता, तो थककर चूर-चूर हो जाता। उस वक्त चूल्हा जलाना, भोजन पकाना बहुत अखरता। कभी-कभी वह अपने अकेलेपन पर रोता। रात को जब किसी तरह नींद न आती, तो उसका मन किसी से बातें करने को लालायित होने लगता; पर वहाँ निशाधकार के सिवा और कौन था? दीवारों के कान चाहे हों, मुँह नही होता। इधर ज्ञानप्रकाश के पत्र भी अब कम आते थे, और वे भी रूखे। उनमें अब हृदय के सरल उद्गारों का लेश भी न रहता। सत्यप्रकाश अब भी वैसे ही भावमय पत्र लिखता था; पर एक अध्यापक के लिए भावुकता कब शोभा देती है? शनैः-शनैः सत्यप्रकाश को भ्रम होने लगा, कि ज्ञानप्रकाश भी मुझमे निष्ठुरता करने लगा, नहीं तो क्या मेरे पास दो-चार दिन के लिए आना असम्भव था? मेरे लिए तो घर का द्वार बन्द है, पर उसे कौन-सी बाधा है? उस गरीब को क्या मालूम, कि यहाँ ज्ञानप्रकाश ने माता से कलकत्ते न जाने की कसम खा ली है। इस भ्रम ने उसे और भी हताश कर दिया।

शहरो में मनुष्य बहुत होते है, पर मनुष्यता विरले ही मे होती है। सत्यप्रकाश उस बहुसख्यक स्थान में भी अकेला था। उसके मन में अब एक नई आकाक्षा अकुरित हुई। क्यों न घर लौट चलूँ? किसी सगिनी के प्रेम की क्यो न शरण लूँ? वह सुख और शान्ति और कहाँ

मिल सकती है ? मेरे जीवन के निराशांधकार को और कौन ज्योति आलोकित कर सकती है? वह इस आवेश को अपनी सम्पूर्ण विचार शक्ति से रोकता, पर जिस भाँति किसी बालक को घर में रक्खी हुई मिठाइयों की याद, बार-बार खेल से खींच लाती है, उसी तरह उसका चित्त भी बार-बार उन्हीं मधुर चिन्ताओं में मग्न हो जाता था। वह सोचता—मुझे विधाता ने सब सुखों से वंचित कर दिया है, नहीं तो मेरी दशा ऐसी हीन क्यों होती ? मुझे ईश्वर ने बुद्धि न दी थी क्या ? क्या मैं श्रम से जी चुराता था ? अगर बालपन ही में मेरे उत्साह और अभिरुचि पर तुषार न पड़ गया होता, मेरी बुद्धि-शक्तियों का गला न घोट दिया गया होता, तो मैं भी आज आदमी होता, पेट पालने के लिए इस विदेश में न पड़ा रहता। नहीं, मैं अपने ऊपर यह अत्याचार न करूँगा।

महीनों तक सत्यप्रकाश के मन और बुद्धि में यह संघर्ष होता रहा। एक दिन वह दूकान में आकर चूल्हा जलाने जा रहा था, कि डाकिये ने पुकारा। ज्ञानप्रकाश के सिवा उसके पास और किसी के पत्र न आते थे। आज ही उनका पत्र आ चुका था। यह दूसरा पत्र क्यों ? किसी अनिष्ट की आशंका हुई। पत्र लेकर पढ़ने लगा। एक क्षण में पत्र उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ा, और वह सिर थामकर बैठ गया, कि जमीन पर न गिर पड़े। यह देवप्रिया की विषयुक्त लेखनी से निकला हुआ जहर का तीर था, जिसने एक पल में उसे संज्ञाहीन कर दिया। उसकी सारी मर्मान्तक व्यथा—क्रोध, नैराश्य, कृतघ्नता, ग्लानि—केवल एक ठंडी साँस में समाप्त हो गई।

वह जाकर चारपाई पर लेट रहा। मानसिक-व्यथा आप-से-आप पानी हो गई। हाँ ! सारा जीवन नष्ट हो गया ! मैं ज्ञानप्रकाश का शत्रु हूँ ? मैं इतने दिनों से केवल उसके जीवन को मिट्टी में मिलाने के लिए ही प्रेम का स्वाँग भर रहा हूँ ? भगवन् ! तुम्हीं इसके साक्षी हो ?

तीसरे दिन फिर देवप्रिया का पत्र पहुँचा। सत्यप्रकाश ने उसे लेकर फाड़ डाला। पढ़ने की हिम्मत न पड़ी।

एक ही दिन पीछे तीसरा पत्र पहुँचा। उसका भी वही अन्त हुआ।

फिर तो वह एक नित्य का कर्म हो गया! पत्र आता और फाड़ दिया जाता; किन्तु देवप्रिया का अभिप्राय बिना पढ़े ही पूरा हो जाता था—सत्यप्रकाश के मर्मस्थान पर एक चोट और पड़ जाती थी।

एक महीने की भीषण हार्दिक वेदना के बाद सत्यप्रकाश को जीवन से घृणा हो गई। उसने दूकान बन्द कर दी, बाहर आना-जाना छोड़ दिया। सारे दिन खाट पर पड़ा रहता। वे दिन याद आते, जब माता पुचकारकर गोद में बिठा लेती, और कहती—बेटा! पिता सन्ध्या समय दफ़्तर से आकर गोद में उठा लेते, और कहते—भैया! माता की सजीव मूर्ति उसके सामने आ खड़ी होती, ठीक वैसी ही जब वह गंगा-स्नान करने गई थी। उसकी प्यार भरी बातें कानों में गूँजने लगती। फिर वह दृश्य सामने आता, जब उसने नववधू माता को 'अम्मा' कहकर पुकारा था। तब उसके कठोर शब्द याद आ जाते, उसके क्रोध से भरे हुए विकराल नेत्र आँखों के सामने आ जाते, उसे अपना सिसक-सिसककर रोना याद आ जाता। फिर सौर-गृह का दृश्य सामने आता। उसने कितने प्रेम से बच्चे को गोद में लेना चाहता था! तब माता वज्र के-से शब्द कानों में गूँजने लगते। हाय! उसी वज्र ने मेरा सर्वनाश कर दिया! ऐसी कितनी ही घटनाएँ याद आतीं। अब बिना किसी अपराध के माँ डाँट बताती, पिता का निर्दय, निष्ठुर व्यवहार याद आने लगता। उनका बात-बात पर त्योरियाँ बदलना, माता के मिथ्यापवादों पर विश्वास करना—हाय! मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया! तब वह करवट बदल लेता, और फिर वही दृश्य आँखों में फिरने लगते। फिर करवट बदलता और चिल्ला उठता—'इस जीवन का अन्त क्यों नहीं हो जाता!' इस भाँति पड़े-पड़े उसे कई दिन हो गये। संध्या हो गई थी, कि सहसा उसे द्वार पर किसी के पुकारने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने कान लगाकर सुना, और चौंक पड़ा—कोई परिचित आवाज थी। दौड़ा द्वार पर आया, तो देखा ज्ञानप्रकाश खड़ा है। कितना रूपवान् पुरुष था! वह उसके गले से लिपट गया। ज्ञानप्रकाश ने उसके पैरों को स्पर्श किया। दोनों भाई घर में आये। अन्धकार छाया हुआ था। घर की

यह दशा देखकर ज्ञानप्रकाश, जो अब तक अपने कंठ के आवेग को रोके हुए था, रो पड़ा। सत्यप्रकाश ने लालटेन जलाई। घर क्या था, भूत का डेरा था। सत्यप्रकाश ने जल्दी से एक कुरता गले मे डाल लिया। ज्ञान-प्रकाश भाई का जर्जर शरीर, पीला मुख, बुझी हुई आँखें देखता और रोता था।

सत्यप्रकाश ने कहा—मैं आज कल बीमार हूँ।

ज्ञानप्रकाश—यह तो देख ही रहा हूँ।

सत्य०—तुमने अपने आने की सूचना भी न दी, मकान का पता कैसे चला?

ज्ञान०—सूचना तो दी थी, आपको पत्र न मिला होगा।

सत्य०—अच्छा, हाँ, दी होगी, पत्र दूकान में डाला गया होगा। मैं इधर कई दिनों से दूकान नहीं गया। घर पर सब कुशल है?

ज्ञान०—माताजी का देहान्त हो गया।

सत्य०—अरे! क्या बीमार थीं?

ज्ञान०—जी नहीं। मालूम नहीं क्या खा लिया। इधर उन्हे उन्माद-सा हो गया था। पिताजी ने कुछ कटु वचन कहे थे, शायद इसी पर कुछ खा लिया।

सत्य०—पिताजी तो कुशल से है?

ज्ञान०—हाँ अभी मरे नहीं हैं।

सत्य०—अरे! क्या बहुत बीमार हैं?

ज्ञान०—माता ने विष खा लिया, तो वह उनका मुंह खोलकर दवा पिला रहे थे। माताजी ने जोर से उनकी दो उँगलियाँ काट लीं। वही विष उनके शरीर मे पहुँच गया। तब से सारा शरीर सूज आया है। अस्पताल में पड़े हुए है, किसी को देखते हैं, तो काटने दौड़ते है। बचने की आशा नहीं है।

सत्य०—तब तो घर ही चौपट हो गया!

ज्ञान०—ऐसे घर को अब से बहुत पहले चौपट हो जाना चाहिये था। तीसरे दिन दोनो भाई प्रातःकाल कलकत्ते से बिदा होकर चल दिये।

डिक्री के रुपए

नईम और कैलास में इतनी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक अभिन्नता थी, जितनी दो प्राणियों में हो सकती है। नईम दीर्घकाय विशाल वृक्ष था, कैलास बाग का कोमल पौदा ; नईम को क्रिकेट और फ़ुटबाल, सैर और शिकार का व्यसन था, कैलास को पुस्तकावलोकन का, नईम एक विनोदशील, वाक्चतुर, निर्द्वंद्व, हास्यप्रिय, विलासी युवक था। उसे 'कल' की चिंता कभी न सताती थी। विद्यालय उसके लिए क्रीडा का स्थान था, और कभी-कभी बेंच पर खडे होने का। इसके प्रतिकूल कैलास एक एकान्तप्रिय, आलसी, व्यायाम से कोसों भागनेवाला, आमोद-प्रमोद से दूर रहनेवाला, चिंताशील, आदर्शवादी जीव था। वह भविष्य की कल्पनाओं से विकल रहता था। नईम एक सुसम्पन्न, उच्च पदाधिकारी पिता का एक-मात्र पुत्र था। कैलास एक साधारण व्यवसायी के कई पुत्रों में से एक था। उसे पुस्तकों के लिए प्रचुर धन न मिलता था, वह माँग-जाँचकर काम निकाला करता था। एक के लिए जीवन आनन्द का स्वप्न था, और दूसरे के लिए विपत्तियों का बोझ, पर इतनी विषमताओं के होते हुए भी उन दोनों में घनिष्ठ मैत्री और निःस्वार्थ, विशुद्ध प्रेम था। कैलास मर जाता पर नईम का अनुग्रह-पात्र न बनता, और नईम मर जाता पर कैलास से बेअदबी न करता। नईम की खातिर से कैलास कभी-कभी स्वच्छ, निर्मल वायु का सुख उठा लिया करता था। कैलास की खातिर से नईम भी कभी-कभी भविष्य के स्वप्न देख लिया करता था। नईम के लिए राज्यपद का द्वार खुला हुआ था, भविष्य कोई अपार सागर न था। कैलास को अपने हाथों से कुआँ खोदकर पानी पीना था, भविष्य एक भीषण संग्राम था, जिसके स्मरण-मात्र से उसका चित्त अशान्त हो उठता था।

(२)

कॉलेज से निकलने के बाद नईम को शासन-विभाग मे एक उच्च पद प्राप्त होगया, यद्यपि वह तीसरी श्रेणी में पास हुआ था। कैलास प्रथम श्रेणी मे पास हुआ था; किन्तु उसे वर्षों एड़ियाँ रगडने, खाक छानने और कुएँ झाँकने पर भी कोई काम न मिला। यहाँ तक कि विवश होकर अपनी कलम का आश्रय लेना पड़ा। उसने एक समाचार-पत्र निकाला। एक ने राज्याधिकार का रास्ता लिया, जिसका लक्ष्य धन था, और दूसरे ने सेवा-मार्ग का सहारा लिया, जिसका परिणाम ख्याति, कष्ट और कभी-कभी कारागार होता है। नईम को उसके दफ्तर के बाहर कोई न जानता था, किन्तु वह बँगले में रहता, मोटर पर हवा खाता, थिएटर देखता और गर्मियों में नैनीताल की सैर करता था। कैलास को सारा संसार जानता था, पर उसके रहने का मकान कच्चा था, सवारी के लिए अपने पाँव थे। बच्चों के लिए दूध भी मुश्किल से मिलता था, साग-भाजी में काट-कपट करना पडता था। नईम के लिए सबसे बडे सौभाग्य की बात यह थी, कि उसके केवल एक पुत्र था, पर कैलास के लिए सबसे बडी दुर्भाग्य की बात उसकी सन्तान-वृद्धि थी, जो उसे पनपने न देती थी। दोनो मित्रो मे पत्र-व्यवहार होता रहता था। कभी-कभी दोनो में मुलाकात भी हो जाती थी। नईम कहता था—यार, तुम्हीं मजे मे हो, देश और जाति की कुछ सेवा तो कर रहे हो। यहाँ तो पेट-पूजा के सिवा और किसी काम के न हुए; पर यह पेट-पूजा उसने कई दिनों की कठिन तपस्या से हृदयगम कर पाई थी, और वह उसके प्रयोग के लिए अवसर ढूँढता रहता था।

कैलास खूब समझता था, कि यह केवल नईम की विनयशीलता है। वह मेरी कुदशा से दुःखी होकर मुझे इस उपाय से सान्त्वना देना चाहता है, इसलिये वह अपनी वास्तविक स्थिति को उससे छिपाने का विफल प्रयत्न किया करता था।

विष्णुपुर की रियासत में हाहाकार मचा हुआ था। रियासत का मैनेजर अपने बँगले में, ठीक दोपहर के समय, सैकडों आदमियों के

सामने, क़त्ल कर दिया गया था। यद्यपि खूनी भाग गया था ; पर अधिकारियों को सन्देह था, कि कुँअर साहब की दुष्प्रेरणा से ही यह हत्याभिनय हुआ है। कुँअर साहब अभी बालिग न हुए थे। रियासत का प्रबन्ध कोर्ट आफ् वार्ड द्वारा होता था। मैनेजर पर कुँअर साहब की देख-रेख का भाग भी था। विलास-प्रिय कुँअर को मैनेजर का हस्तक्षेप बहुत ही बुरा मालूम होता था। दोनो में वर्षों से मनमुटाव था। यहाँ तक कि कई बार प्रत्यक्ष कटु वाक्यों की नौबत भी आ पहुँची थी, अतएव कुँअर साहब पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था। इस घटना का अनुसधान करने के लिए जिले के लिए हाकिम ने मिरजा नईम को नियुक्त किया। किसी पुलिस-कर्मचारी द्वारा तहक़ीक़ात कराने में कुँअर साहब के अपमान का भय था।

नईम को अपने भाग्य-निर्माण का स्वर्ण सुयोग प्राप्त हुआ। वह न त्यागी था, न ज्ञानी। सभी उसके चरित्र की दुर्बलता से परिचित थे ; अगर कोई न जानता था, तो हुक्काम लोग। कुँअर साहब ने मुँह-माँगी मुराद पाई। नईम जब विष्णुपुर पहुँचा, तो उसका असामान्य आदर-सत्कार हुआ। भेंट चढने लगीं, अरदली के चपरासी, पेशकार, साईस, बावर्ची, खिदमतगार, सभी के मुँह तर और मुट्ठियाँ गरम होने लगीं। कुँअर साहब के हवाली मवाली रात-दिन घेरे रहते, मानो दामाद ससुराल आया हो।

एक दिन प्रातःकाल कुँअर साहब की माता आकर नईम के सामने हाथ बाँधे खड़ी हो गई। नईम लेटा हुआ हुक्का पी रहा था। तप, संयम और वैधव्य की यह तेजस्वी प्रतिमा देखकर वह उठ बैठा।

रानी उसकी ओर वात्सल्य पूर्ण लोचनों से देखती हुई बोलीं—हुजूर मेरे बेटे का जीवन आपके हाथ में है। आपही उसके भाग्य-विधाता हैं। आपको उसी माता की सौगंद है, जिसके आप सुयोग्य पुत्र हैं, मेरे लाल की रक्षा कीजियेगा। मैं अपना सर्वस्व आपके चरणों पर अर्पण करती हूँ। स्वार्थ ने दया के संयोग से नईम को पूर्ण रीति से वशीभूत कर लिया।

(३)

उन्हीं दिनों कैलास नईम से मिलने आया। दोनो मित्र बड़े तपाक से गले मिले। नईम ने बातों बातो मे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, और कैलास पर अपने कृत्य का औचित्य सिद्ध करना चाहा।

कैलास ने कहा—मेरे विचार मे पाप सदैव पाप है, चाहे वह किसी आवरण में मडित हो।

नईम—और मेरा विचार है कि अगर गुनाह से किसी की जान बचती हो, तो वह ऐन सवाब है। कुँअर साहब अभी नौजवान आदमी है। बहुत ही होनहार, बुद्धिमान्, उदार और सहृदय है। आप उनसे मिलें तो खुश हो जायें। उनका स्वभाव अत्यन्त विनम्र है। मैं, जो यथार्थ मे दुष्ट प्रकृति का मनुष्य था, बरबस कुँअर साहबको दिक किया करता था। यहाँ तक कि एक मोटरकार के लिए इसने रुपए न स्वीकार किये, न सिफारिश की। मैं नहीं कहता, कि कुँअर साहब का यह कार्य स्तुत्य है, लेकिन बहस यह है, कि उनको अपराधी सिद्ध करके उन्हे कालेपानी की हवा खिलाई जाय, या निरपराध सिद्ध करके उनकी प्राण-रक्षा की जाय? और भई, तुमसे तो कोई परदा नहीं है, पूरे बीस हजार की थैली है। बस, मुझे अपनी रिपोर्ट में यह लिख देना होगा, कि व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण यह दुर्घटना हुई है; राजा साहब का इससे कोई सम्पर्क नहीं। जो शहादते मिल सकीं, उन्हे मैंने गायब कर दिया। मुझे इस कार्य के लिए नियुक्त करने मे अधिकारियो की एक मसलहत थी। कुँअर साहब हिन्दू हैं, इसलिए किसी हिन्दू-कर्मचारी को नियुक्त न करके जिलाधीश ने यह भार मेरे सिर पर रखा। यह साम्प्रदायिक विरोध मुझे निस्पृह सिद्ध करने के लिए काफी है। मैंने दो-चार अवसरों पर कुछ तो हाकिमों की प्रेरणा से और कुछ स्वेच्छा से मुसलमानों के साथ पक्षपात किया, जिससे यह मशहूर हो गया है, कि मैं हिन्दुओं का कट्टर दुश्मन हूँ। हिन्दू लोग मुझे पक्षपात का पुतला समझते है। यह भ्रम मुझे आक्षेपो से बचाने के लिए काफ़ी है। बताओ, हूँ तकदीरवर कि नहीं?

कैलास—अगर कहीं बात खुल गई, तो ?

नईम—तो यह मेरी समझ का फेर, मेरे अनुसंधान का दोष, मानव-प्रकृति के एक अटल नियम का उज्ज्वल उदाहरण होगा ! मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं। मेरी नीयत पर आँच न आने पावेगी। मुझपर रिशवत लेने का सदेह न हो सकेगा। आप इसके व्यवहारिक कोण पर न जाइये, केवल नैतिक कोण पर निगाह रखिये। यह कार्य नीति के अनुकूल है या नहीं ? आध्यात्मिक सिद्धान्तो को न खींच लाइयेगा, केवल नीति के सिद्धान्तों से इसकी विवेचना कीजिये।

कैलास—इसका एक अनिवार्य फल यह होगा, कि दूसरे रईसों को भी ऐसे दुष्कृत्यों की उत्तेजना मिलेगी। धन से बड़े-से-बड़े पापों पर परदा पड सकता है, इस विचार के फैलने का फ़ल कितना भयकर होगा, इसका आप स्वय अनुमान कर सकते है।

नईम—जी नहीं, मैं यह अनुमान नहीं कर सकता। रिशवत अब भी नब्बे फी सदी अभियोगों पर परदा डालती है। फिर भी पाप का भय प्रत्येक के हृदय मे है।

दोनो मित्रों में देर तक इस विषय में तर्क-वितर्क होता रहा ; लेकिन कैलास का न्याय-विचार नईम के हास्य और व्यग्य से पेश न पा सका।

(४)

विष्णुपुर के हत्याकाड पर समाचार-पत्रों में आलोचना होने लगी। सभी पत्र एक स्वर से राजा साहब को ही लाछित करते और गवर्नमेंट को राजा साहब का अनुचित पक्षपात करने का दोष लगाते थे ; लेकिन इसके साथ यह भी लिख देते थे, कि अभी यह अभियोग विचाराधीन है ; इसलिए इस पर टीका नहीं की जा सकती।

मिरज़ा नईम ने अपनी खोज को सत्य का रूप देने के लिए पूरे एक महीने व्यतीत किये। जब उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई, तो राजनीतिक क्षेत्र मे विप्लव मच गया। जनता के सदेह की पुष्टि हो गई।

कैलास के सामने अब एक जटिल समस्या उपस्थित हुई। अभी तक

उसने इस विषय पर एक-मात्र मौन धारण कर रखा था। वह यह निश्चय न कर सकता था, कि क्या लिखूँ। गवर्नमेंट का पक्ष लेना अपनी अन्तरात्मा को पद-दलित करना था, आत्म स्वातत्र्य का बलिदान करना था; पर मौन रहना और भी अपमानजनक था। अन्त को जब सहयोगियो मे दो-चार ने उसके ऊपर साकेतिक रूप से आक्षेप करना शुरू किया कि उसका मौन निरर्थक नहीं है, तब उसके लिए तटस्थ रहना असह्य हो गया। उसके वैयक्तिक तथा जातीय कर्तव्य मे घोर सग्राम होने लगा। उस मैत्री को, जिसके अकुर पचीस पर्ष पहले हृदय मे अंकुरित हुए थे, और अब जो सघन, विशाल वृक्ष का रूप धारण कर चुकी थी, हृदय से निकालना, हृदय को चीरना था। वह मित्र, जो उसके दुःख में दुखी और सुख में सुखी होता था, जिसका उदार हृदय नित्य उसकी सहायता के लिए तत्पर रहता था, जिसके घर में जाकर वह अपनी चिन्ताओ को भूल जाता था, जिसके प्रेमालिंगन मे वह अपने कष्टों को विसर्जित कर दिया करता था, जिसके दर्शन मात्र ही से उसे आश्वासन, दृढ़ता तथा मनोबल प्राप्त होता था, उसी मित्र की जड़ खोदनी पड़ेगी! वह बुरी सायत थी, जब मैंने सम्पादकीय क्षेत्र में पदार्पण किया, नहीं तो आज इस धर्म-सकट मे क्यो पडता! कितना घोर विश्वासघात होगा! विश्वास मैत्री का मुख्य अग है। नईम ने मुझे अपना विश्वास-पात्र बनाया है, मुझसे कभी परदा नहीं रखा, उसके उन गुप्त रहस्यो को प्रकाश मे लाना उसके प्रति कितना घोर अन्याय होगा! नहीं, मैं मैत्री को कलकित न करूँगा, उसकी निर्मल कीर्ति पर धब्बा न लगाऊँगा, मैत्री पर वज्राघात न करूँगा। ईश्वर वह दिन न लावे, कि मेरे हाथो नईम का अहित हो। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि यदि मुझ पर कोई सकट पडे, तो नईम मेरे लिए प्राण तक दे देने को तैयार हो जायगा। उसी मित्र को मैं ससार के सामने अपमानित करूँ, उसकी गरदन पर कुठार चलाऊँ! भगवान्, मुझे वह दिन न दिखाना।

लेकिन जातीय कर्तव्य का पक्ष भी निरस्त्र न था। पत्र का सम्पादक परपरागत नियमो के अनुसार जाति का सेवक है। वह जो कुछ देखता

है, वह जाति की विराट् दृष्टि से ही। वह जो कुछ विचार करता है, उस पर भी जातीयता की छाप लगी होती है। नित्य जाति के विस्तृत विचार-क्षेत्र मे विचरण करते रहने से व्यक्ति का महत्त्व उसकी दृष्टि मे अत्यन्त संकीर्ण हो आता है। वह व्यक्ति को क्षुद्र, तुच्छ, नगण्य समझने लगता है। व्यक्ति का जाति पर बलि देना उसकी नीति का प्रथम अंग है। यहाँ तक कि वह बहुधा अपने स्वार्थ को भी जाति पर वार देता है। उसके जीवन का लक्ष्य महान् और आदर्श पवित्र होता है। वह उन महान् आत्माओ का अनुगामी होता है, जिन्होने राष्ट्रो का निर्माण किया है, जिनकी कीर्ति अमर हो गई है, जो दलित राष्ट्रों का उद्धार करनेवाली हो गई है। वह यथाशक्ति कोई ऐसा काम न कर सकता, जिससे उसके पूर्वजो की उज्ज्वल विरुदावली मे कालिमा लगने का भय हो। कैलास राजनीतिक क्षेत्र में बहुत कुछ यश और गौरव प्राप्त कर चुका था। उसकी सम्मति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उसके निर्भीक विचारो ने, उसकी निष्पक्ष टीकाओं ने उसे संपादक-मण्डली का प्रमुख नेता बना दिया था। अतएव इस अवसर पर मैत्री का निर्वाह, केवल उसकी नीति और आदर्श ही के विरुद्ध नही, उसके मनोगत भावो के भी विरुद्ध था। इसमे उसका अपमान था, आत्मपतन था, भीरुता थी। यह कर्तव्य-पथ से विमुख होना और राजनीतिक क्षेत्र से सदैव के लिए बहिष्कृत हो जाना था। सोचता, एक व्यक्ति की चाहे वह मेरा कितना ही आत्मीय क्यों न हो, राष्ट्र के सामने क्या हस्ती है? नईम के बनने या बिगड़ने से राष्ट्र पर कोई असर न पड़ेगा; लेकिन शासन की निरंकुशता और अत्याचार पर परदा डालना राष्ट्र के लिए भयंकर सिद्ध हो सकता है। उसे इसकी परवा न थी, कि मेरी आलोचना का प्रत्यक्ष कोई प्रभाव होगा या नहीं। संपादक की दृष्टि में अपनी सम्मति सिंहनाद के समान प्रतीत होती है। वह कदाचित् समझता है, कि मेरी लेखनी शासन कंपायमान कर देगी, विश्व को हिला देगी। शायद सारा संसार मेरी कलम की सरसराहट से थर्रा उठेगा। मेरे विचार प्रकट होते ही युगांतर उपस्थित कर देंगे। नईम मेरा मित्र है; किन्तु राष्ट्र मेरा

इष्टदेव है। मित्र के पद की रक्षा के लिए क्या अपने इष्ट पर प्राणघातक आघात करूँ?

कई दिनों तक कैलास के व्यक्तिगत और सम्पादकीय कर्तव्यों में संघर्ष होता रहा। अन्त को जाति ने व्यक्ति को परास्त कर दिया। उसने निश्चय किया, कि मैं इस रहस्य का यथार्थ स्वरूप दिखा दूँगा, शासन के अनुत्तरदायित्व को जनता के सामने खोलकर रख दूँगा; शासन-विभाग के कर्मचारियों की स्वार्थ-लोलुपता का नमूना दिखा दूँगा, दुनिया को दिखा दूँगा कि सरकार किनकी आँखों से देखती है, किनके कानों से सुनती है। उसकी अक्षमता, उसकी अयोग्यता, और उसकी दुर्बलता को प्रमाणित करने का सबसे बढ़कर और कौन-सा उदाहरण मिल सकता है? नईम मेरा मित्र है, तो हो; जाति के सामने वह कोई चीज नहीं है। उसकी हानि के भय से मैं राष्ट्रीय कर्तव्य से क्यों मुँह फेरूँ, अपनी आत्मा को क्यों दूषित करूँ, अपनी स्वाधीनता को क्यों कलंकित करूँ? आह, प्राणों से प्रिय नईम! मुझे क्षमा करना, आज तुम-जैसे मित्र रत्न को मैं अपने कर्तव्य की वेदी पर बलि चढ़ाता हूँ, मगर तुम्हारी जगह अगर मेरा पुत्र होता, तो उसे भी इसी कर्तव्य की बलि-वेदी पर भेंट कर देता।

दूसरे दिन से कैलास ने इस दुर्घटना की मीमांसा शुरू की। जो कुछ उसने नईम से सुना था, वह सब एक लेख-माला के रूप में प्रकाशित करने लगा। घर का भेदी लंका दाहे। अन्य संपादकों को जहाँ अनुमान, तर्क और युक्ति के आधार पर अपना मत स्थिर करना पड़ता था, और इसलिये वे कितना ही अनर्गल, अपवाद-पूर्ण बातें लिख डालते थे, वहाँ कैलास की टिप्पणियाँ प्रत्यक्ष प्रमाणों से युक्त होती थीं। वह पते की बातें कहता था, और उस निर्भीकता के साथ, जो दिव्य अनुभव का निर्देश करती थी। उसके लेखों में विस्तार कम, पर सार अधिक होता था। उसने नईम को भी न छोड़ा, उसकी स्वार्थ-लिप्सा का खूब खाका उड़ाया। यहाँ तक कि वह धन की संख्या भी लिख दी, जो इस कुत्सित व्यापार पर परदा डालने के लिए उसे दी गई थी। सबसे मजे की बात

यह थी, कि उसने नईम से एक राष्ट्रीय गुप्तचर की मुलाकात का भी उल्लेख किया, जिसने नईम को रुपए लेते देखा था। अंत में गवर्नमेंट को भी चैलेञ्ज दिया, कि जो उसमे साहस हो, तो वह मेरे प्रमाणों को झूठा साबित कर दे। इतना ही नहीं, उसने वह वार्तालाप भी अक्षरशः प्रकाशित कर दिया, जो उसके और नईम के बीच हुआ था। रानी का नईम के पास जाना, उसके पैरों पर गिरना, कुँअर साहब का नईम के पास नाना प्रकार के तोहफे लेकर आना, इन सभी प्रसङ्गों ने उसके लेखों में एक जासूसी उपन्यास का मज़ा पैदा कर दिया।

इन लेखों ने राजनीतिक क्षेत्र में हलचल मचा दी। पत्र-सम्पादकों को अधिकारियों पर निशाने लगाने के ऐसे अवसर बड़े सौभाग्य से मिलते है। जगह-जगह शासन की इस करतूत की निन्दा करने के लिए सभाएँ होने लगीं। कई सदस्यों ने व्यवस्थापक-सभा मे इस विषय पर प्रश्न करने की घोषणा की। शासकों को कभी ऐसी मुँह की न खानी पडी थी। आखिर उन्हे अपनी मान रक्षा के लिए इसके सिवा और कोई उपाय न सूझा, कि वे मिरजा नईम को कैलास पर मान-हानि का अभियोग चलाने के लिए विवश करें।

(५)

कैलास पर इस्तग़ासा दायर हुआ। मिरजा नईम की ओर से सरकार पैरवी करती थी। कैलास स्वयं अपनी पैरवी कर रहा था। न्याय के प्रमुख सरक्षकों (वकील-बैरिस्टरों) ने किसी अज्ञात कारण से उसकी पैरवी करना अस्वीकार किया। न्यायाधीश को हारकर कैलास को कानून की सनद न रखते हुए भी अपने मुकदमे की पैरवी करने की आज्ञा देनी पडी। महीनों अभियोग चलता रहा। जनता में सनसनी फैल गई। रोज हजारों आदमी अदालत में एकत्र होते थे। बाजारों में अभियोग की रिपोर्ट पढने के लिये समाचार-पत्रों की लूट होती थी। चतुर पाठक पढ़े हुये पत्रों से घडी रात जाते-जाते दुगुने पैसे खडे कर लेते थे; क्योंकि उस समय तक पत्र-विक्रेताओं के पास कोई पत्र न बचने पाता था। जिन बातों का ज्ञान पहले गिने-गिनाये पत्र-ग्राहकों को था, उन पर अब जनता

की टिप्पणियाँ होने लगी। नईम की मिट्टी कभी इतनी खराब न हुई थी; गली-गली, घर-घर, उसी की चर्चा थी। जनता का क्रोध उसी पर केन्द्रित हो गया था। वह दिन भी स्मरणीय रहेगा, जब दोनो सच्चे, एक दूसरे पर प्राण देनेवाले मित्र अदालत में आमने-सामने खडे हुए, और कैलास ने मिरजा नईम से जिरह करनी शुरू की। कैलास को ऐसा मानसिक कष्ट हो रहा था, मानो वह नईम की गरदन पर तलवार चलाने जा रहा है। और नईम के लिए तो वह अग्नि-परीक्षा थी। दोनो के मुख उदास थे; एक का आत्म ग्लानि से, दूसरे का भय से। नईम प्रसन्न बनने की चेष्टा करता था, कभी-कभी सूखी हँसी भी हँसता था; लेकिन कैलास—आह, उस गरीब के दिल पर जो गुजर रही थी, उसे कौन जान सकता है।

कैलास ने पूछा—आप और हम साथ पढते थे, इसे आप स्वीकार करते है?

नईम—अवश्य स्वीकार करता हूँ।

कैलास—हम दोनो में इतनी घनिष्ठता थी, कि हम आपस मे कोई परदा न रखते थे, इसे आप स्वीकार करते है?

नईम—अवश्य स्वीकार करता हूँ।

कैलास—जिन दिनो आप इस मामले की जाँच कर रहे थे, मैं आपसे मिलने गया था, इसे भी आप स्वीकार करते है?

नईम—अवश्य स्वीकार करता हूँ।

कैलास—क्या उस समय आपने मुझसे यह नहीं कहा था, कि कुँअर साहब की प्रेरणा से यह हत्या हुई है?

नईम—कदापि नहीं।

कैलास—आपके मुख से यह शब्द नही निकले थे, कि बीस हजार की थैली है?

नईम जरा भी न झिझका, जरा भी सकुचित न हुआ। उसकी जबान मे लेश-मात्र भी लुकनत न हुई, वाणी में ज़रा भी थर-थराहट न आई। उसके मुख पर अशान्ति, अस्थिरता या असमंजस का कोई भी

चिन्ह न दिखाई दिया। वह अविचल खड़ा रहा। कैलास ने बहुत डरते-डरते यह प्रश्न किया था, उसको भय था, कि नईम इसका कुछ जवाब न दे सकेगा। कदाचित् रोने लगेगा; लेकिन नईम ने निःशङ्क भाव से कहा—सम्भव है, आपने स्वप्न में मुझसे यह बातें सुनी हों।

कैलास एक क्षण के लिए दंग हो गया। फिर उसने विस्मय से नईम की ओर नजर डाल कर पूछा—क्या आपने यह नहीं फरमाया, कि मैंने दो-चार अवसरों पर मुसलमानों के साथ पक्षपात किया है, और इसीलिए मुझे हिन्दू-विरोधी समझकर इस अनुसंधान का भार सौंपा गया है?

नईम जरा भी न झिझका। अविचल, स्थिर और शांत भाव से बोला—आपकी कल्पना-शक्ति वास्तव में आश्चर्य-जनक है। बरसों तक आपके साथ रहने पर भी मुझे यह विदित न हुआ था, कि आप में घटनाओं का आविष्कार करने की ऐसी चमत्कार-पूर्ण शक्ति है।

कैलास ने और कोई प्रश्न न किया। उसे अपने पराभव का दुःख न था, दुःख था नईम की आत्मा के पतन का। वह कल्पना भी न कर सकता था, कि कोई मनुष्य अपने मुँह से निकली हुई बात को इतनी ढिठाई से अस्वीकार कर सकता है, और वह भी उसी आदमी के मुँह पर, जिससे वह बात कही गई हो। यह मानवीय दुर्बलता की पराकाष्ठा है। वह नईम, जिसका अंदर और बाहर एक था, जिसके विचार और व्यवहार में भेद न था, जिसकी वाणी आंतरिक भावों का दर्पण थी, वह नईम वह सरल, आत्माभिमानी, सत्य-भक्त नईम, इतना धूर्त, ऐसा मक्कार हो सकता है! क्या दासता के साँचे में ढलकर मनुष्य अपना मनुष्यत्व भी खो बैठता है? क्या यह दिव्य गुणों के रूपांतरित करने का यंत्र है?

अदालत ने नईम को बीस हजार रुपयों की डिक्री दे दी। कैलास पर मानो वज्रपात हो गया।

(६)

इस निश्चय पर राजनीतिक-संसार में फिर कुहराम मचा। सरकारी पक्ष के पत्रों ने कैलास को धूर्त कहा, जन-पक्षवालों ने नईम को शैतान बनाया। नईम के दुस्साहस ने न्याय की दृष्टि में चाहे उसे निरपराध

सिद्ध कर दिया हो ; पर जनता की दृष्टि में तो और भी गिरा दिया। कैलास के पास सहानुभूति के पत्र और तार आने लगे। पत्रों में उसकी निर्भीकता और सत्यनिष्ठा की प्रशंसा होने लगी। जगह-जगह सभायें और जलसे हुए और न्यायालय के निश्चय पर असतोष प्रकट किया गया ; किन्तु सूखे बादलों से पृथ्वी की तृप्ति तो नहीं होती ? रुपए कहाँ से आवें और वह भी एक दम से बीस हजार! आदर्श-पालन का यही मूल्य है ; राष्ट्र-सेवा महँगा सौदा है। बीस हजार! इतने रुपए तो कैलास ने शायद स्वप्न में देखे भी न हो और अब देने पड़ेंगे। कहाँ से देगा ? इतने रुपयो के सूद से ही वह जीविका के चिन्ता से मुक्त हो सकता था ; उसे अपने पत्र में अपनी विपत्ति का रोना रोकर चदा एकत्र करने से घृणा थी। मैंने अपने ग्राहकों की अनुमति लेकर इस शेर से मोर्चा नहीं लिया था। मैनेजर की वकालत करने के लिए किसी ने मेरी गरदन नहीं दबाई थी। मैंने अपना कर्तव्य समझ कर ही शासको को चुनौती दी। जिस काम के लिए मैं, अकेला मैं जिम्मेदार हूँ, उसका भार अपने ग्राहकों पर क्यो डालूँ ! यह अन्याय है। सम्भव है, जनता मे आन्दोलन करने से दो-चार हजार रुपए हाथ आ जायँ, लेकिन यह सम्पादकीय आदर्श के विरुद्ध है। इससे मेरी शान में बट्टा में लगता है। दूसरो को यह कहने का क्यों अवसर दूँ, कि और के मत्थे फुलौड़ियाँ खाईं, तो क्या बड़ा जग जीत लिया! जब जानते, कि अपने बल बूते पर गरजते! निर्भीक आलोचना का सेहरा तो हमारे सिर बँधा ; उसका मूल्य दूसरों से क्यो वसूल करूँ ? मेरा पत्र बन्द हो जाय, मैं पकड़ कर कैद किया जाऊँ, मेरा मकान कुर्क कर लिया जाय, बरतन-भाँडे नीलाम हो जायँ, यह सब मुझे मजूर है। जो कुछ सिर पड़ेगी, भुगत लूँगा ; पर किसी के सामने हाथ न फैलाऊँगा।

सूर्योदय का समय था। पूर्व दिशा से प्रकाश की छटा ऐसी दौडी चली आती थी, जैसे आँखों मे आँसुओ की धारा। ठडी हवा कलेजे पर यो लगती थी, जैसे किसी के करुण क्रन्दन की ध्वनि। सामने का मैदान दुःखी हृदय की भाँति ज्योति के बाणों से बिंध रहा था, घर मे वह निस्त-

न्धता छाई हुई थी, जो गृह-स्वामी के गुप्त रोदन की सूचना देती हैं। न बालकों का शोर-गुल था, और न माता की शान्ति-प्रसारिणी शब्द-ताड़ना। जब दीपक बुझ रहा हो, तो घर में प्रकाश कहाँ से आये? यह आशा का प्रभाव नहीं शोक का प्रभाव था, क्योंकि आज ही कुर्क-अमीन कैलास की सम्पत्ति को नीलाम करने के लिए आनेवाला था।

उसने अतर्वेदना से विकल होकर कहा—आह! आज मेरे सार्वजनिक जीवन का अन्त हो जायगा। जिस भवन का निर्माण करने में अपने जीवन के पच्चीस वर्ष लगा दिये, वह आज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। पत्र की गरदन पर छुरी फिर जायगी, मेरे पैरों मे उपहास और अपमान की वेड़ियाँ पड़ जायँगी, मुख में कालिमा लग जायगी, यह शान्ति-कुटीर उजड़ जायगी यह शोकाकुल परिवार किसी मुरझाये हुए फूल की पँखड़ियों की भाँति बिखर जायगा। ससार मे उसके लिए कहीं आश्रय नहीं है। जनता की स्मृति चिरस्थायी नहीं होती, अल्प काल मे मेरी सेवायें विस्मृति के अन्धकार में लीन हो जायँगी। किसी को मेरी सुध भी न रहेगी, कोई मेरी विपत्ति पर आँसू बहानेवाला भी न होगा।

सहसा उसे याद आया कि आज के लिए अभी अग्रलेख लिखना है। आज अपने सुहृद पाठकों को सूचना दूँ, कि यह इस पत्र के जीवन का अन्तिम दिवस है, उसे फिर आपकी सेवा मे पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त न होगा। हमसे अनेक भूल हुई होंगी। आज हम उनके लिए आप से क्षमा माँगते हैं। आपने हमारे प्रति जो समवेदना और सहृदयता प्रकट की है, उसके लिए हम सदैव आप के कृतज्ञ रहेगे। हमे किसी से कोई शिकायत नहीं है। हमे इस अकाल मृत्यु का दुःख नही है, क्योंकि यह सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता है, जो अपने कर्तव्य-पथ पर अविचल रहते है। दुःख यही है, कि हम जाति के लिए इससे अधिक बलिदान करने में समर्थ न हुए।

इस लेख को आदि से अन्त तक सोचकर वह कुर्सी से उठा ही था, कि किसी के पैरो की आहट मालूम हुई। गरदन उठाकर देखा, तो मिरजा नईम था। वही हँसमुख चेहरा, वही मन्द मुसकान, वही क्रीड़ामय नेत्र। आते ही कैलास के गले से लिपट गया।

कैलास ने गरदन छुड़ाते हुए कहा—क्या मेरे घाव पर नमक छिड़कने, मेरी लाश को पैरों से ठुकराने आये हो ?

नईम ने उसकी गरदन को और जोर से दबाकर कहा—और क्या, मुहब्बत के यही तो मजे है!

कैलास—मुझसे दिल्लगी न करो। मरा बैठा हूँ, मार बैठूँगा।

नईम की आँखें सजल हो गई। बोला—आह जालिम, मैं तेरी जबान से यही कटु वाक्य सुनने के लिए तो विकल हो रहा था। जितना चाहे कोसो, खूब गालियाँ दो, मुझे इसमे मधुर-संगीत का आनन्द आ रहा है।

कैलास—और, अभी जब अदालत का कुर्क-अमीन मेरा घर-बार नीलाम करने आवेगा, तो क्या होगा ? बोलो, अपनी जान बचाकर तो अलग हो गये।

नईम—हम दोनो मिलकर खूब तालियाँ बजावेंगे, और उसे बन्दर की तरह नचावेंगे।

कैलास—तुम अब पिटोगे मेरे हाथो से ! जालिम, तुझे मेरे बच्चों पर भी दया न आई ?

नईम—तुम भी तो चले मुझी से जोर आजमाने। कोई समय था, जब बाजी तुम्हारे हाथ रहती थी, अब मेरी बारी है। तुमने मौका महल तो देखा नहीं, मुझी पर पिल पडे।

कैलास—सरासर सत्य की उपेक्षा करना मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध था।

नईम—और सत्य का गला घोटना मेरे सिद्धान्त के अनुकूल।

कैलास—अभी एक पूरा परिवार तुम्हारे गले मढ दूँगा, तो अपनी किस्मत को रोओगे। देखने में तुम्हारा आधा भी नहीं हूँ, लेकिन सन्तानोत्पत्ति मे तुम जैसे तीन पर भारी हूँ। पूरे सात हैं, कम न वेश।

नईम—अच्छा लाओ, कुछ खिलाते पिलाते हो, या तकदीर का मरसिया ही गाये जाओगे ? तुम्हारे सिर की क़सम, बहुत भूका हूँ। घर से बिना खाये ही चल पड़ा।

कैलाश—यहाँ आज सोलहो दंड एकादशी है। सब-के-सब शोक में बैठे उसी अदालत के जल्लाद की राह देख रहे है। खाने-पीने का क्या जिक्र! तुम्हारे बेग में कुछ हो, तो निकालो। आज साथ बैठकर खा लें, फिर तो जिन्दगी-भर का रोना है ही।

नईम—फिर तो ऐसी शरारत न करोगे?

कैलास—वाह, यह तो अपने रोम रोम में व्याप्त हो गई है। जब तक सरकार पशुबल से हमारे ऊपर शासन करती रहेगी, हम उसका विरोध करते रहेगे। खेद यही है, कि अब मुझे उसका अवसर ही न मिलेगा; किन्तु तुम्हें बीस हजार रुपए में से बीस टके भी न मिलेंगे। यहाँ रद्दियों के ढेर के सिवा और कुछ नहीं है।

नईम—अजी, मैं तुमसे बीस हजार की जगह उसका पचगुना वसूल कर लूँगा। तुम हो किस फेर मे?

कैलास—मुँह धो रखिये!

नईम—मुझे रुपयो की जरूरत है। आओ, कोई समझौता कर लो।

कैलास—कुँअर साहब के बीस हजार रुपये डकार गये, फिर भी अभी सतोष नहीं हुआ? बदहजमी हो जायगी!

नईम—धन से धन की भूख बढती है, तृप्ति नहीं होती। आओ कुछ मामला कर लो। सरकारी कर्मचारियों-द्वारा मामला करने में और भी जेरबारी होगी।

कैलास—अरे तो क्या मामला कर लूँ। यहाँ कागजों के सिवा और कुछ हो भी तो!

नईम—मेरा ऋण चुकाने-भर को वहुत है। अच्छा इसी बात पर समझौता कर लो कि जो चीज चाहूँ, ले लूँ। फिर रोना मत।

कैलास—अजी तुम सारा दफ्तर उठा ले जाओ, घर उठा ले जाओ, मुझे उठा ले जाओ, और मीठे टुकडे खिलाओ। कसम ले लो, जो जरा भी चूँ करूँ।

नईम—नहीं, मैं सिर्फ एक चीज़ चाहता हूँ, सिर्फ एक चीज़।

कैलास के कौतूहल की कोई सीमा न रही। सोचने लगा, मेरे पास ऐसी कौन-सी बहुमूल्य वस्तु है ? कहीं मुझसे मुसलमान होने को तो न कहेगा। यही धर्म एक चीज है, जिसका मूल्य एक से लेकर असंख्य रखा जा सकता है। जरा देखूँ, तो हज़रत क्या कहते हैं ?

उसने पूछा—क्या चीज़ ?

नईम—मिसेज कैलास से एक मिनट तक एकान्त में बात-चीत करने की आज्ञा !

कैलास ने नईम के सिर पर एक चपत जमाकर कहा—फिर वही शरारत ! सैकड़ों बार तो देख चुके हो, ऐसी कौन-सी इन्द्र की अप्सरा है ?

नईम—वह कुछ भी हो, मामला करते हो, तो करो ; मगर याद रखना, एकान्त की शर्त्त है।

कैलास—मंजूर है, मगर फिर जो डिग्री के रुपए माँगे गये, तो नोच ही खाऊँगा।

नईम—हाँ, मंजूर है।

कैलास—(धीरे से) मगर यार, नाजुक-मिजाज स्त्री है ; कोई बेहूदा मजाक न कर बैठना।

नईम—जी, इन बातों में मुझे आपके उपदेश की जरूरत नहीं। मुझे उनके कमरे में ले तो चलिये।

कैलास—सिर नीचा किये रहना।

नईम—अजी आँखों में पट्टी बाँध दो।

कैलास के घर में परदा न था। उमा चिन्ता-मग्न बैठी हुई थी। सहसा नईम और कैलास को देखकर चौंक पड़ी। बोली—आइये मिरज़ाजी, अब की तो बहुत दिनों में याद किया।

कैलास नईम को वहीं छोड़कर कमरे के बाहर निकल आया ; लेकिन परदे की आड़ से छिपकर देखने लगा, कि इनमें क्या बातें होती हैं। उसे कुछ बुरा खयाल न था, केवल कौतूहल था।

नईम—हम सरकारी आदमियों को इतनी फुरसत कहाँ ? डिक्री के रुपए वसूल करने थे ; इसलिए चला आया हूँ।

उमा कहाँ तो मुसकरा रही थी, कहाँ रुपयों का नाम सुनते ही उसका चेहरा फक हो गया। गंभीर स्वर में बोली—हम लोग स्वयं इसी चिन्ता में पड़े हुए है। कहीं रुपए मिलने की आशा नहीं है, और उन्हें जनता से अपील करते सकोच होता है।

नईम—अजी, आप कहती क्या हैं? मैंने तो सब रुपए पाई-पाई वसूल कर लिये।

उमा ने चकित होकर कहा—सच! उनके पास रुपए कहाँ थे?

नईम—उनकी हमेशा से यही आदत है। आपसे कह रखा होगा, मेरे पास कौड़ी नहीं है, लेकिन मैंने चुटकियों में वसूल कर लिया। आप उठिये, खाने का इन्तजाम कीजिये!

उमा—रुपए भला क्या दिये होंगे। मुझे एतबार नहीं आता।

नईम—आप सरल हैं, और वह, एक ही काइयाँ। उसे तो मैं ही खूब जानता हूँ। अपनी दरिद्रता के दुखड़े गा-गाकर आपको चकमा दिया करता होगा।

कैलास मुसकराते हुए कमरे मे आये, और बोले—अच्छा अब निकलिये बाहर! यहाँ भी अपनी शैतानी से बाज नहीं आये?

नईम—रुपयों की रसीद तो लिख दूँ!

उमा—क्या तुमने रुपए दे दिये? कहाँ मिले?

कैलास—फिर कभी बतला दूँगा।—उठिये हजरत!

उमा—बताते क्यों नहीं, कहाँ मिले? मिरजाजी से कौन-सा परदा है?

कैलास—नईम, तुम उमा के सामने मेरी तौहीन करना चाहते हो?

नईम—तुमने सारी दुनिया के सामने मेरी तौहीन नहीं की?

कैलास—तुम्हारी तौहीन की, तो उसके लिए बीस हज़ार रुपए नहीं देने पड़े!

नईम—मैं भी उसी टकसाल के रुपए दे दूँगा। उमा, मैं रुपए पा गया। इन बेचारे का परदा ढका रहने दो।

मुक्ति-मार्ग

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुदरी को अपने गहनो पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमड होता है, वही किसान को अपने खेतो को लहराते हुए देखकर होता है। झींगुर अपने ऊख के खेतों को देखता, तो उस पर नशा-सा छा जाता। तीन बीघे ऊख थी। इससे छः सौ रुपए तो अनायास ही मिल जायँगे। और जो कही भगवान् ने डॉड़ी तेज कर दी, तो फिर क्या पूछना। दोनो बैल बुड्ढे हो गये। अब की नई गोई बटेसर के मेले से ले आवेगा। कहीं दो बीघे खेत और मिल गये, तो लिखा लेगा। रुपयो की क्या चिता है। बनिये अभी से उसकी खुशामद करने लगे थे। ऐसा कोई न था, जिससे उससे गॉव मे लड़ाई न की हो। वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था।

एक दिन सध्या के समय वह अपने बेटे को गोद में लिये मटर की फलियॉ तोड रहा था। इतने मे उसे भेड़ों का एक झुड अपनी तरफ आता दिखाई दिया। वह अपने मन मे कहने लगा—इधर से भेड़ो के निकालने का रास्ता न था। क्या खेत की मेड़ पर से भेड़ो का झुड नही जा सकता था? भेडो को इधर से लाने की क्या जरूरत? ये खेत को कुचलेगी, चरेंगी। इसका डॉड़ कौन देगा? मालूम होता है, बुद्धू गडेरिया है। बचा को घमड हो गया है, तभी तो खेतों के बीच से भेड़ें लिये चला आता है जरा इसकी ढिठाई तो देखो। देख रहा है, कि मैं खड़ा हूँ, फिर भी भेडो को लौटाता नहीं। कौन मेरे साथ कभी रियायत की है, कि मैं इसकी मुरौवत करूँ? अभी एक भेड़ा मोल मॉगूँ, तो पॉच ही रुपए सुनावेगा। सारी दुनिया मे चार-चार रुपए के कबल बिकते है; पर वह पॉच रुपए से नीचे बात नहीं करता।

इतने मे भेड़ें खेत के पास आ गई। झींगुर ने ललकारकर कहा—अरे, ये भेड़ें कहाँ लिये आते हो। कुछ सूझता है, कि नही?

बुद्धू नम्र भाव से बोला—महतो, डाँड़ पर से निकल जायँगी। घूमकर जाऊँगा, तो कोस भर का चक्कर पड़ेगा।

झींगुर—तो तुम्हारा चक्कर बचाने के लिए मैं अपना खेत क्यों कुचलाऊँगा? डाँडे ही पर से ले जाना है, तो और खेतो के डाँड़ से क्यों नहीं ले गये? क्या मुझे कोई चुहड-चमार समझ लिया है? या धन का घमड हो गया है? लौटाओ इनको!

बुद्धू—महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ, तो जो चाहे सजा देना।

झींगुर—कह दिया, कि लौटाओ इन्हे। अगर एक भेड भी मेड पर आई, समझ लो, तुम्हारी खैर नहीं है।

बुद्धू—महतो, अगर तुम्हारी एक बेल भी किसी भेड के पैरों तले आ जाय, तो मुझे बिठाकर सौ गालियाँ देना।

बुद्धू बातें तो बडी नम्रता से कर रहा था, किन्तु लौटने में अपनी हेठी समझता था। उसने मन में सोचा—इसी तरह जरा-जरा-सी धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा, तो फिर मैं भेडें चरा चुका! आज लौट जाऊँ, तो कल को निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी रोब जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पोढा आदमी था। बारह कोड़ी भेडें थीं। उन्हे खेतो में बिठाने के लिए फी रात आठ आने कोडी मजदूरी मिलती थी। इसके उपरात दूध बेचता था; ऊन के कम्बल बनाता था। सोचने लगा—इतने गरम हो रहे हैं, मेरा कर ही क्या लेंगे? कुछ इनका दबैल तो हूँ नहीं। भेडों ने जो हरी-हरी पत्तियाँ देखीं, तो अधीर हो गईं। खेत में घुस पड़ीं। बुद्धू उन्हे डंडों से मार-मारकर खेत के किनारे से हटाता था और वे इधर-उधर से निकलकर खेत में जा पडती थीं। झींगुर ने आग होकर कहा—तुम मुझसे हेकड़ी जताने चले हो, तो तुम्हारी सारी हेकड़ी निकाल दूँगा।

बुद्धू—तुम्हें देखकर चौकती हैं। तुम हट जाओ, तो मैं सब को निकाल ले जाऊँ।

झींगुरी ने लडके को तो गोद से उतार दिया और अपना डण्डा सँभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा। धोबी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा। किसी भेड की टाँग टूटी, किसी की कमर। सबने बें-बें का शोर मचाना शुरू किया। बुद्धू चुपचाप खड़ा अपनी सेना का विध्वस अपनी आँखों से देखता रहा। वह न भेड़ों को हाँकता था, न झींगुर से कुछ कहता था। बस, खड़ा तमाशा देखता रहा। दो मिनट मे झींगुर ने इस सेना को अपने अमानुषिक पराक्रम से मार भगाया। मेष दल का सहार करके विजय-गर्व से बोला—अब सीधे चले जाओ। फिर इधर से आने का नाम न लेना।

बुद्धू ने आहत भेड़ो की ओर देखते हुए कहा—झींगुर, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। पछताओगे।

(२)

केले को काटना भी इतना आसान नहीं, जितना किसान से बदला लेना। उसकी सारी कमाई खेतों में रहती है, या खलिहानों मे। कितनी ही दैविक और भौतिक आपदाओ के बाद कही नाज घर में आता है और जो कहीं इन आपदाओ के साथ विद्रोह ने भी सन्धि कर ली, तो बेचारा किसान कही का नहीं रहता। झींगुर ने घर आकर दूसरो से इस सग्राम का वृत्तात कहा, तो लोग समझाने लगे—झींगुर, तुमने बड़ा अनर्थ किया। जानकर अनजान बनते हो! बुद्धू को जानते नहीं कितना झगड़ालू आदमी है। अब भी कुछ नही बिगडा। जाकर उसे मना लो। नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आफत आ जायगी। झींगुर की समझ मे बात आई। पछताने लगा, कि मैंने कहाँ-से-कहाँ उसे रोका। अगर भेड़ें थोड़ा बहुत चर ही जातीं, तो कौन मैं उजड जाता था। वास्तव में हम किसानो का कल्याण दबे रहने मे है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठाकर चलना अच्छा नही लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था, किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का महीना था, कुहरा पड़ रहा था। चारों ओर अधकार छाया हुआ था। गाँव से बाहर निकला ही था, कि सहसा अपने ऊख के खेत

की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौंक पड़ा। छाती धड़कने लगी। खेत मे आग लगी हुई थी। बेतहाशा दौड़ा। मनाता जाता था, कि मेरे खेत में न हो; पर ज्यों-ज्यों समीप पहुँचता था, यह आशामय भ्रम शात होता जाता था। वह अनर्थ हो ही गया, जिसके निवारण के लिए घर से चला था। हत्यारे ने आग लगा ही दी, और मेरे पीछे सारे गाँव को चौपट किया। उसे ऐसा जान पड़ता था, कि वह खेत आज बहुत समीप आ गया है, मानो बीच के परती खेतों का अस्तित्व ही नहीं रहा। अन्त मे जब वह खेत पर पहुँचा, तो आग प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी। झींगुर ने 'हाय-हाय' मचाना शुरू किया। गाँव के लोग दौड पड़े, और खेतों से अरहर के पौधे उखाड-उखाडकर आग को पीटने लगे। अग्नि-मानव सग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तक हाहाकार मचा रहा। कभी एक पक्ष प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर-मरकर जी उठते थे, और द्विगुण शक्ति से, रणोन्मत्त होकर, शस्त्र प्रहार करने लगते थे। मानव-पक्ष में जिस योद्धा की कीर्ति सबसे उज्ज्वल थी, वह बुद्धू था। बुद्धू कमर तक धोती चढाये, प्राण हथेली पर लिये, अग्नि-राशि मे कूद पडता था, और शत्रुओं को परास्त करके, बाल-बाल बचकर, निकल आता था। अत में मानव-दल की विजय हुई; किन्तु ऐसी विजय, जिसपर हार भी हँसती। गाँव-भर की ऊख जलकर भस्म हो गई, और ऊख के साथ सारी अभिलाषाएँ भी भस्म हो गईं।

(३)

आग किसने लगाई, यह खुला हुआ भेद था; पर किसी को कहने का साहस न था। कोई सबूत नहीं। प्रमाण-हीन तर्क का मूल्य ही क्या? झींगुर को घर से निकलना मुश्किल हो गया। जिधर जाता, ताने सुनने पड़ते। लोग प्रत्यक्ष कहते थे—यह आग तुमने लगवाई। तुम्हीं ने हमारा सर्वनाश किया। तुम्हीं मारे घमड के धरती पर पैर न रखते थे। आप-के-आप गये, अपने साथ गाँव-भर को डुबो दिया। बुद्धू को न छेड़ते, तो आज क्यो वह दिन देखना पड़ता? झींगुर

को अपनी बरबादी का इतना दुख न था, जितना इन जली-कटी बातों का। दिन भर घर में बैठा रहता। पूस का महीना आया। जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड की सुगन्ध उडती रहती थी, भट्टियाँ जलती रहती थीं, और लोग भट्टियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। ठड के मारे लोग साँझ ही से किवाडे बन्द करके पड़ रहते, और झींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ऊख केवल धनदाता ही नही, किसानों की जीवनदाता भी है। उसी के सहारे किसानो का जाड़ा कटता है। गरम रस पीते है, ऊख की पत्तियाँ तापते, उसके अगोडे पशुओं को खिलाते है। गॉव के सारे कुत्ते, जो रात को भट्टियों की राख मे सोया करते थे, ठड से मर गये। कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे। शीत का प्रकोप हुआ, और सारा गॉव खाँसी-बुखार मे ग्रस्त हो गया। और यह सारी विपत्ति झींगुर की करनी थी—अभागे, हत्यारे झींगुर की!

झींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया, कि बुद्धू की दशा भी अपनी ही-सी बनाऊँगा। उसके कारण मेरा सर्वनाश हो गया, और वह चैन की बंसी बजा रहा है! मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा!

जिस दिन इस घातक कलह का बीजारोपण हुआ, उसी दिन से बुद्धू ने इधर आना छोड दिया था। झींगुर ने उससे रब्त-जब्त बढाना शुरू किया। वह बुद्धू को दिखाना चाहता था, कि तुम्हारे ऊपर मुझे बिलकुल सन्देह नहीं है। एक दिन कबल लेने के बहाने गया, फिर दूध लेने के बहाने। बुद्धू उसका खूब आदर-सत्कार करता। चिलम तो आदमी दुश्मन को भी पिला देता है, वह उसे बिना दूध और शर्बत पिलाये न आने देता। झींगुर आजकल एक सन लपेटनेवाली कल में मजदूरी करने जाया करता। बहुधा कई-कई दिनों की मजदूरी इकट्ठी मिलती थी। बुद्धू ही की तत्परता से झींगुर का रोजाना खर्च चलता था। अतएव झींगुर ने खूब रब्त-जब्त बढ़ा लिया। एक किन बुद्धू ने पूछा—क्यो झींगुर, अगर अपनी ऊख जलानेवाले को पा जाओ, तो क्या करो? सच कहना!

झींगुर ने गंभीर भाव से कहा—मैं उससे कहूँ, भैया, तुमने जो कुछ किया, बहुत अच्छा किया। मेरा घमंड तोड़ दिया; मुझे आदमी बना दिया।

बुद्धू—मैं जो तुम्हारी जगह होता, तो बिना उसका घर जलाये न मानता।

झींगुर—चार दिन की जिन्दगानी मे बैर-विरोध बढ़ाने से क्या फायदा? मैं तो बरबाद हुआ ही, अब उसे बरबाद करके क्या पाऊँगा?

बुद्धू—बस, यही तो आदमी का धर्म है; पर भाई, क्रोध के बस होकर बुद्धि उलटी हो जाती है।

(४)

फागुन का महीना था। किसान ऊख बोने के लिए खेतों को तैयार कर रहे थे। बुद्धू का बाजार गरम था। भेड़ों की लूट मची हुई थी। दो-चार आदमी नित्य द्वार पर खड़े खुशामदें किया करते। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की फीस दूनी कर दी थी। अगर कोई एतराज करता, तो बेलाग कहता—तो भैया, भेड़े तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ। जी न चाहे मत रखो; लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौडी भी कम नहीं हो सकती। गरज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे रहते थे, मानो पडे किसी यात्री के पीछे पड़े हो।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और वह भी समयानुसार छोटा-बड़ा होता रहता है। यहाँ तक कि कभी वह अपना विराट् आकार समेटकर उसे काग़ज़ के चन्द अक्षरो में छिपा लेती हैं। कभी-कभी तो मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती हैं; आकार का लोप हो जाता है; किंतु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती है। वह आईं, और घर बढ़ने लगा। छोटे घर में उनसे नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर बरामदा डाला गया, दो की जगह छः कोठरियाँ बनवाई गईं। यों कहिये, कि मकान नये सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी माँगी, किसी से खपरों का आँवा लगाने के लिए उपले, किसी से

-बॉस और किसी से सरकडे। दीवार की उठवाई देनी पड़ी। वह भी नकद नहीं, भेड़ों के बच्चों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप है। सारा काम बेगार मे हो गया। मुफ़्त में अच्छा-खासा घर तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं।

इधर झींगुर दिन-भर मजदूरी करता, तो कहीं आधे पेट -अन्न मिलता। बुद्धू के घर कचन बरस रहा था। झींगुर जलता था, तो क्या बुरा करता था ? यह अन्याय किससे सहा जायगा ?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ चला गया। हरिहर को पुकारा। हरिहर ने आकर राम-राम की, और चिलम भरी। दोनो पीने लगे। यह चमारों का मुखिया बडा दुष्ट आदमी था। सब किसान इससे थर थर कॉपते थे।

झींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा—आजकल फाग-वाग नहीं होता क्या ? सुनाई नहीं देता।

हरिहर—फाग क्या हो, पेट के धधे से छुट्टी ही नहीं मिलती। कहो, तुम्हारी आजकल कैसी निभती है ?

झींगुर—क्या निभती है। नकटा जिया बुरे हवाल ! दिन-भर कल मे मजदूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है। चाँदी तो आजकल बुद्धू की है। रखने का ठौर नहीं मिलता। नया घर बना, भेड़ें और ली हैं। अब गृहीपरवेस की धूम है। सातों गाँवों मे सुपारी जायगी।

हरिहर—लक्ष्मी मैया आती हैं, तो आदमी की आँखों मे सील आ जाता है, पर उसको देखो, धरती पर पैर नहीं रखता। बोलता है, तो ऐंठकर बोलता है।

झींगुर—क्यों न ऐंठे, इस गॉव में कौन है उसकी टक्कर का ? पर यार, यह अनीति तो नहीं देखी जाती। भगवान् दे, तो सिर झुकाकर चलना चाहिये। यह नहीं, कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं। उसकी डींग सुनता हूँ, तो बदन मे आग लग जाती है। कल का बाग़ी आज का सेठ। चला है हमी से अकड़ने ! अभी कल लँगोटी लगाये खेतों मे कौए हँकाया करता था, आज उसका आसामान मे दिया जलता है।

हरिहर—कहो, तो कुछ उताजोग करूँ ?

झींगुर—क्या करोगे ? इसी डर से तो वह गाय-भैंस नहीं पालता।

हरिहर—भेड़ें तो हैं ?

झींगुर—क्या बगला मारे पखना हाथ।

हरिहर—फिर तुम्हीं सोचो।

झींगुर—ऐसी जुगुत निकालो, कि फिर पनपने न पावे।

इसके बाद फुस-फुस करके बात होने लगी। यह एक रहस्य है, कि भलाइयों में जितना द्वेष होता है, बुराइयों मे उतना ही प्रेम। विद्वान् विद्वान् को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता है। एक दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता, पर जुआरी जुआरी को देखकर, शराबी शराबी को देखकर, चोर चोर को देखकर सहानुभूति दिखाता है, सहायता करता है। एक पण्डित अगर अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़े, तो दूसरे पंडितजी उन्हे उठाने के बदले दो ठोकरें और लगावेंगे, कि वह फिर उठ ही न सकें, पर एक चोर पर आफत आई देख, दूसरा चोर उसकी आड़ कर लेता है। बुराई से सब घृणा करते है, इसलिये बुरों मे परस्पर प्रेम होता है। भलाई की सारा ससार प्रशसा करता है, इसलिए भलों में विरोध होता है। चोर को मारकर चोर क्या पावेगा ? घृणा। विद्वान् का अपमान करके विद्वान् क्या पावेगा ? यश।

झींगुर और हरिहर ने सलाह कर ली, षड्यन्त्र रचने की विधि सोची गई। उसका स्वरूप, समय और क्रम ठीक किया। झींगुर चला, तो अकड़ा जाता था। मार लिया दुश्मन को, अब कहाँ जाता है।

(५)

दूसरे दिन झींगुर काम पर जाने लगा, तो पहले बुद्धू के घर पहुँचा। बुद्धू ने पूछा—क्यों, आज नहीं गये क्या ?

झींगुर—जा तो रहा हूँ। तुमसे यही कहने आया था, कि मेरी बछिया को अपनी भेड़ों के साथ क्यों नहीं चरा दिया करते ? बेचारी खूँटे से बँधी-बँधी मरी जाती है। न घास, न चारा। क्या खिलावें ?

बुद्धू—भैया, मैं गाय-भैस नहीं रखता। चमारों को जानते हो

एक ही हत्यारे होते है। इसी हरिहर ने मेरी दो गउएँ मार डालीं। न जाने क्या खिला देता है। तब से कान पकडे, कि अब गाय भैंस न पालूँगा, लेकिन तुम्हारी एक ही बछिया है, उसका कोई क्या करेगा। जब चाहो पहुँचा दो।

यह कहकर बुद्धू अपने गृहोत्सव का सामान उसे दिखाने लगा। घी, शकर, मैदा, तरकारी सब मँगा रखा था। केवल 'सत्यनारायण की कथा' की देर थी। झींगुर की आँखें खुल गईं। ऐसी तैयारी न उसने स्वय कभी की थी, और न किसी को करते देखी थी। मजदूरी करके घर लौटा, तो सबसे पहला काम जो उसने किया, वह अपनी बछिया को बुद्धू के घर पहुँचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ 'सत्यनारायण की कथा' हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रों की आगत-स्वागत करते गुजरी। भेड़ो के झुण्ड मे जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातःकाल भोजन करके उठा ही था (क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला), कि एक आदमी ने आकर खबर दी—बुद्धू तुम यहाँ बैठे हो, उधर भेडों मे बछिया मरी पडी है। भले आदमी, उसकी पगहिया भी नहीं खोली थी?

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गई। झींगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला—हाय मेरी बछिया! चलो, जरा देखूँ तो, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों मे पहुँचाकर अपने घर चला गया। तुमने यह पगहिया कब लगा दी?

बुद्धू—भगवान् जानें, जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो। मैं तो तब से भेड़ो मे गया ही नहीं।

झींगुर—जाते न तो पगहिया कौन लगा देता? गये होगे, याद न आती होगी।

एक ब्राह्मण—मरी तो भेडों मे ही न? दुनिया तो यही कहेगी; कि बुद्धू की असावधानी से उसकी मृत्यु हुई, पगहिया किसी की हो।

हरिहर—मैंने कल साँझ को इन्हे भेडों मे बछिया को बाँधते देखा था।

बुद्धू—मुझे !

हरिहर—तुम नहीं लाठी कंधे पर रखे बछिया को बाँध रहे थे ?

बुद्धू—बड़ा सच्चा है तू! तूने मुझे बछिया को बाँधते देखा था ?

हरिहर—तो मुझ पर काहे को बिगड़ते हो भाई ? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही ।

ब्राह्मण—इसका निश्चय करना होगा । गो-हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । कुछ हँसी ठट्ठा है !

झींगुर—महाराज, कुछ जान बूझकर तो बाँधी नहीं ।

ब्राह्मण—इससे क्या होता है ? हत्या इसी तरह लगती है ; कोई गऊ को मारने नहीं जाता ।

झींगुर—हाँ, गऊओं को खोलना-बाँधना है तो जोखिम का काम !

ब्राह्मण—शास्त्रों में इसे महापाप कहा है । गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं ।

झींगुर—हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही । इसी से न इसका मान होता है । जो माता, सो गऊ , लेकिन महाराज, चूक हो गई । कुछ ऐसा कीजिये, कि थोड़े में बिचारा निपट जाय ।

बुद्धू खड़ा सुन रहा था, कि अनायास मेरे सिर हत्या मढ़ी जा रही है । झींगुर की कूटनीति भी समझ रहा था । मैं लाख कहूँ, मैंने बछिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन ? लोग यही कहेंगे कि प्रायश्चित्त से बचने के लिए ऐसा कह रहा है ।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित कराने में कल्याण होता था । भला ऐसे अवसर पर कब चूकनेवाले थे । फल यह हुआ, कि बुद्धू को हत्या लग गई । ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे । कसर निकालने की घात मिली । तीन मास का भिक्षा-दंड दिया, फिर सात तीर्थ-स्थानों की यात्रा, उसपर पाँच सौ विप्रों का भोजन और पाँच गउओं का दान । बुद्धू ने सुना, तो बधिया बैठ गई । रोने लगा, तो दंड घटाकर दो मास का कर दिया । इसके सिवा कोई रिआयत न हो सकी । न कहीं अपील न कहीं फरियाद ! बेचारे को यह दण्ड स्वीकार करना पड़ा ।

(६)

बुद्धू ने भेड़ें ईश्वर को सौंपीं। लड़के छोटे थे। स्त्री अकेली क्या क्या करेगी। जाकर द्वारों पर खड़ा होता, और मुँह छिपाये हुए कहता : गाय की बाछी दियो बनवास। भिक्षा तो मिल जाती ; किंतु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर, अपमान-जनक शब्द भी सुनने पड़ते। दिन को जो कुछ पाता, वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बनाकर खा लेता, और वहीं पर रहता। कष्ट की तो उसे परवा न थी, भेड़ों के साथ दिन भर चलता ही था, पेड़ के नीचे सोता ही था, भोजन भी इससे कुछ ही अच्छा मिलता था ; पर लज्जा थी भिक्षा माँगने की। विशेष करके जब कोई कर्कशा यह व्यंग कर देती थी, कि रोटी कमाने का अच्छा ढग निकाला है, तो उसे हार्दिक वेदना होती थी ; पर करे क्या ?

दो महीने के बाद वह घर लौटा। बाल बढ़े हुए थे। दुर्बल इतना, मानो साठ वर्ष का बूढ़ा हो। तीर्थ-यात्रा के लिए रुपयों का प्रबंध करना था। गड़रियों को कौन महाजन कर्ज दे ? भेड़ों का भरोसा क्या ! कभी-कभी रोग फैलता है, तो रात-भर में दल-का-दल साफ हो जाता है। उस पर जेठ का महीना, जब भेडों से कोई आमदनी होने की आशा नहीं। एक तेली राजी भी हुआ, तो दो आना रुपया व्याज पर। आठ महीने में व्याज मूल के बराबर हो जायगा। यहाँ कर्ज लेने की हिम्मत न पडी, इधर दो महीनों में कितनी ही भेड़ें चोरी चली गई थीं। लडके चराने ले जाते थे। दूसरे गाँववाले चुपके से एक-दो भेडें किसी खेत या घर मे छिपा देते, और पीछे मारकर खा जाते। लड़के वेचारे एक तो पकड़ न सकते और जो देख भी लेते, तो लड़े क्योंकर। सारा गाँव एक हो जाता था। एक महीने मे तो भेड़ें आधी भी न रहेंगी। बडी विकट समस्या थी। विवश होकर बुद्धू ने एक बूचड को बुलाया, और सब भेडें उसके हाथ वेच डालीं। पाच सौ रुपए हाथ लगे। उसमे से दो सौ रुपए लेकर वह तीर्थ यात्रा करने गया। शेष रुपए ब्रह्मभोज आदि के लिए छोड गया।

बुद्धू के जाने पर उसके घर मे दो बार सेंध लगी ; पर यह कुशल हुई, कि जगहग हो जाने के कारण रुपए बच गये।

(७)

सावन का महीना था। चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। झींगुर के बैल न थे। खेत बँटाई पर दे दिये थे। बुद्धू प्रायश्चित निवृत्त हो गया था और उसके साथ ही माया के फन्दे से भी। न झींगुर के पास कुछ था, न बुद्धू के पास। कौन किससे जलता और किस लिए जलता?

सन की कल बन्द हो जाने के कारण झींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। झींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता, और रात-भर रहकर सवेरे फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मजदूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा, दुर्बल आदमी है; कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरों को गारा देने के लिए रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया, तो झींगुर को देखा। राम-राम हुई, झींगुर ने गारा भर दिया, बुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनों चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

सध्या-समय झींगुर ने पूछा—कुछ बनाओगे न?

बुद्धू—नहीं तो खाऊँगा क्या?

झींगुर—मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूँ। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झंझट करे।

बुद्धू—इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं, बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पर पिसवा लिया था। यहाँ तो बड़ा महँगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं; इसलिए तुम्हीं रोटियाँ सेंको, मैं बना दूँगा।

झींगुर—तवा भी तो नहीं है?

बुद्धू—तवे बहुत हैं। यही गारे का तसला माँजे लेता हूँ।

आग जली, आटा गूँधा गया। झींगुर ने कच्ची-पक्की रोटियाँ बनाईं। बुद्धू पानी लाया। दोनो ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खाईं। फिर चिलम भरी गई। दोनो आदमी पत्थर की सिलों पर लेटे, और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा—तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी।

झींगुर ने विनोद के भाव से कहा—जानता हूँ। थोड़ी देर के बाद झींगुर बोला—बछिया मैंने ही बाँधी थी और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था।

बुद्धू ने वैसे ही भाव से कहा—जानता हूँ।

फिर दोनो सो गये।

शतरंज के खिलाड़ी

वाजिदअलीशाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बडे, अमीर-ग़रीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग मे आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र मे, सामाजिक व्यवस्था मे, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना मे, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन मे, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने मे, व्यवसायी सुरमे, इत्र मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखो में विलासिता का मद छाया हुआ था। ससार मे क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है; पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरज का घोर सग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पडती है, ये दलीलें जोर के साथ पेश की जाती थीं (इस सम्प्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी नहीं खाली है); इसलिए अगर मिर्ज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकाश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनो के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या! प्रात.काल दोनो मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाँव-पेंच होने लगते। फिर खबर न होती

थी, कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता—खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—चलो, आते हैं; दस्तरख्वान बिछाओ। यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे ही मे खाना रख जाता था, और दोनो मित्र दोनो काम साथ-साथ करते थे। मिर्जा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढा न था; इसलिए उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती थीं; मगर यह बात न थी, कि मिर्जा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से खुश हों। घरवालो का तो कहना ही क्या, महल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेष-पूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे, किसी को इसकी चाट पडे। आदमी दीन, दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्जा की बेगम साहब को इससे इतना द्वेष था, कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताडती थीं; पर उन्हे इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाजी बिछ जाती थी, और रात को जब सो जाती थी, तब कहीं मिर्जाजी, भीतर आते थे। हाँ, नौकरो पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थी—क्या पान माँगे है? कह दो, आकर ले जायँ। खाने की भी फुरसत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायँ, चाहे कुत्ते को खिलावें, पर रूबरू वह भी कुछ न कर सकती थी। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीरसाहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्जाजी अपनी सफाई देने के लिए सारा इल्जाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर मे दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा, जाकर मिर्जा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावे। दौड़, जल्दी कर। लौंडी गई, तो मिर्जाजी ने कहा—चल, अभी आते है। बेगम साहब का मिजाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर मे दर्द हो, और पति शतरज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंडी ने कहा—जाकर कह, अभी चलिये, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी। मिर्जाजी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे

थे ; दो ही किस्तों में मीरसाहब को मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले—क्या ऐसा दम लबों पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?

मीर—अरे तो जाकर सुन ही आइये न। औरतें नाज़ुक-मिजाज होती ही है।

मिर्ज़ा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ! दो किश्तो मे आपको मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे न रहियेगा। वह चाल सोची है, कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय ; पर जाइये, सुन आइये। क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइयेगा?

मिर्ज़ा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्ज़ा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ, सिर दर्द खाक नहीं है ; मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ ही हो, उनकी खातिर तो करनी पड़ेगी।

मिर्ज़ा—अच्छा, एक चाल और चलूँ।

मीर—हर्गिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

मिर्ज़ा साहब मजबूर होकर अन्दर गये, तो बेगम साहब ने त्योरियाँ बदलकर ; लेकिन कराहते हुए कहा—तुम्हे निगोडी शतरंज इतनी प्यारी है! चाहे कोई मर ही जाय ; पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिर्ज़ा—क्या कहूँ मीरसाहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुडाकर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह खुद निखट्टू है, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी तो बाल बच्चे हैं, या सबका सफाया कर डाला?

मिर्ज़ा—बडा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पडता है।

बेगम—दुतकार क्यों नही देते?

मिर्जा—बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में ; मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पड़ता है।

बेगम—तो मैं ही दुतकारे देती हूँ। नाराज हो जायँगे, हो जायँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ ले जाइये।

मिर्जा—हाँ-हाँ, कहीं ऐसा गजब भी न करना! जलील करना चाहती हो क्या! ठहर हिरिया, कहाँ जाती है?

बेगम—जाने क्यों नहीं देते? मेरा ही खून पिये, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको, तो जानूँ!

यह कहकर बेगम साहब झल्लाई हुई दीवानखाने के तरफ चलीं। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिन्नतें करने लगे—खुदा के लिए, तुम्हे हजरत हुसेन की कसम। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाय, लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानखाने के द्वार तक गईं ; पर एका-एक पर पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गये। भीतर झाँका। सयोग से कमरा खाली था। मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिये थे, और अपनी सफाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँचकर बाजी उलट दी, मुहरें कुछ तख्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर, और किवाड़े अन्दर से बन्द करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ गये, बेगम साहबा बिगड़ गईं। चुपके से घर की राह ली।

मिर्जा ने कहा—तुमने गजब किया!

बेगम—अब मीर साहब इधर आये, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ खुदा से लगाते, तो क्या गरीब हो जाते! आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फिक्र मे सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ, कि अब भी ताम्मुल है?

मिर्जा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के

घर पहुँचे, और सारा वृत्तांत कहा। मीर साहब बोले—मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं ; मगर आपने उन्हे यों सिर चढा रखा है। यह मुनासिब नहीं। उन्हे इससे क्या मतलब, कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इन्तजाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार ?

मिर्जा—खैर यह तो बताइये, अब कहाँ जमाव होगा ?

मीर—इसका क्या ग़म। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस, यहीं जमे।

मिर्जा—लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा। जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ बैठक होगी, तो शायद जिंदा न छोड़ेंगी।

मीर—अजी, बकने भी दीजिये ; दो-चार रोज मे आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिये, कि आज से जरा तन जाइये।

(२)

मीर साहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिए वह उनके शतरज-प्रेम की कभी आलोचना न करतीं ; बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था, कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गंभीर है, लेकिन जब दीवानखाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो उन्हे बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता मे बाधा पड गई। दिन-भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरो में भी काना-फूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े पडे मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था। आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेग़म साहबा से जा-जाकर कहते—हुजूर, मियाँ की शतरज तो हमारे जी का जंजाल हो गई ! दिन

भर दौड़ते-दौड़ते पैरों मे छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है, कि सुबह को बैठे, तो शाम ही कर दी! घड़ी-आध-घड़ी दिल-बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमे तो कोई शिकायत नही, हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई-न-कोई आफत जरूर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले-के-महल्ले तबाह होते देखे गये हैं। सारे महल्ले मे यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं, अपने आका की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है; मगर क्या करें। इस पर बेगम साहब कहतीं—मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती; पर वह किसी की सुनते ही नही, तो क्या किया जाय।

महल्ले में भी जो दो-चार पुराने जमाने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे—अब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफिज। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य मे हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ मे खिंची चली आती थी, और वह वेश्याओ मे, भाँड़ों मे, और विलासिता के अन्य अङ्गों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेज-कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश मे सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेजीडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे मे चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

खैर, मीर साहब के दीवानखाने मे शतरंज होते कई महीने गुजर गये। नये-नये नक्शे हल किये जाते, नये-नये किले बनाये जाते; नित नई व्यूह-रचना होती; कभी-कभी खेलते-खेलते झौड़ हो जाती, तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती; पर शीघ्र ही दोनो मित्रों मे मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता, कि बाजी उठा दी जाती; मिर्जाजी अपने घर चले आते; मीर साहब अपने घर मे जा बैठते; पर

रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनो मित्र दीवानखाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनो मित्र बैठे शतरंज की दलदल मे ग़ोते खा रहे थे, कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीरसाहब के होश उड़ गये! यह क्या बला सिर पर आई। यह तलबी किस लिए हुई! अब खैरियत नही नजर आती। घर के दरवाजे बन्द कर लिये। नौकरों से बोले—कह दो; घर मे नहीं है।

सवार—घर मे नहीं, तो कहाँ हैं?

नौकर—यह मैं नही जानता। क्या काम है?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुजूर मे तलबी है—शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी! मोरचे पर जाना पडेगा, तो आटे दाल का भाव मालूम हो जायगा!

नौकर—अच्छा, तो जाइये, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नहीं है। मैं कल खुद आऊँगा! साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी। मिर्जाजी से बोले—कहिये जनाब, अब क्या होगा?

मिर्जा—बडी मुसीबत है, कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर—कम्बख्त कल फिर आने को कह गया है!

मिर्जा—आफत है और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बेमौत मरे।

मीर—बस, यह एक तदबीर है, कि घर पर मिलो ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने मे नक्शा जमे। वहाँ किसे खबर होगी? हजरत आकर आप लौट जायँगे।

मिर्जा—वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवा और कोई तदबीर ही नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं—तुमने खूब धता बताई। उसने जवाब दिया—ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर

नचाता हूँ। इनकी सारी अक़्ल और हिम्मत, तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

(३)

दूसरे दिन से दोनो मित्र मुँह-अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल मे एक छोटी-सी दरी दबाये, डिब्बे मे गिलौरियाँ भरे गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसिफउद्दौला ने बनवाया था। रास्ते मे तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते, और मसजिद मे पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हे दीनदुनिया की फिक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनो मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हे भोजन का भी खयाल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयकर होती जा रही थी। कम्पनी की फौजें लखनऊ की तरफ बढी चली आती थीं। शहर मे हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे; पर हमारे दोनो खिलाडियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियो में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार मे पकड जायँ। हजारों रुपए सालाना की जागीर मुफ़्त मे ही हजम करना चाहते थे।

एक दिन दोनो मित्र मसजिद के खँडहर मे बैठे हुए शतरज खेल रहे थे। मीर साहब की बाजी कुछ कमजोर थी। मिर्जा उन्हे किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिये। यह गोरों की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीर साहब बोले—अँगरेज़ी फौज आ रही है; खुदा खैर करे।

मिर्जा—आने दीजिये, किश्त बचाइये। लो यह किश्त!

मीर—ज़रा देखा चाहिये—यहीं आड़ में खड़े हो जायँ।

मिर्ज़ा—देख लीजियेगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त!

मीर—तोपखाना भी है। कोई पाँच हजार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बन्दरों के-से मुँह है। सूरत देखकर खौफ मालूम होता है।

मिर्ज़ा—जनाब, हीले न कीजिये। ये चकमे किसी और को दीजियेगा—यह किश्त!

मीर—आप भी अजीब आदमी है। यहाँ तो शहर पर आफत आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी है। कुछ इसकी खबर है, कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे?

मिर्ज़ा—जब घर चलने का वक्त आवेगा, तो देखी जायगी—यह किश्त! बस, अब की शह में मात है।

फौज निकल गई। दस बजे का समय था, फिर बाजी छिड़ गई।

मिर्ज़ा बोले—आज खाने की कैसी ठहरेगी?

मीर—अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको ज्यादा भूख मालूम होती है?

मिर्ज़ा—जी नहीं। शहर में न जाने क्या हो रहा है।

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनो सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गये। अबकी मिर्ज़ाजी की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था, कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लिये गये थे, और सेना उन्हे किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-से-बड़े कायर भी आँसू बहाते है। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था,

और लखनऊ ऐश की नींद मे मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी !

मिर्ज़ा ने कहा—हुजूर नवाब साहब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिये शह !

मिर्जा—जनाब जरा ठहरिये। इस वक्त इधर तबीयत नही लगती। बेचारे नवाब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होगे।

मीर—रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाॅ नसीब होगा—यह किश्त !

मिर्जा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है !

मीर—हाँ, सो तो है ही—यह लो, फिर किश्त ! बस, अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिर्जा—खुदा की कसम, आप बडे बेदर्द है। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय गरीब वाजिदअली शाह !

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइये, फिर नवाब साहब का मातम कीजियेगा। यह किश्त और मात। लाना हाथ।

बादशाह को लिये हुये सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइये, नवाब साहब के मातम मे एक मरसिया कह डालें; लेकिन मिर्जाजी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

(४)

शाम हो गई खॅडहर मे चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलों मे चिमटीं, पर दोनो खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस मे लड़ रहे हों। मिर्जाजी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाजी का रङ्ग अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सॅभलकर

खेलते थे ; लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती जाती थी ; उधर मीर साहब मारे उमंग के गजलें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हों। मिर्जाजी सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे, पर ज्यों ज्यों बाजी कमजोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे—जनाब, आप चाल न बदला कीजिये। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल लीजिये। यह आप मुहरे पर ही हाथ क्यों रखे रहते हैं ? मुहरे को छोड़ दीजिये। जब तक आपको चाल न सूझे मुहरा छूइये ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे मे चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे, उसकी मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली ! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिये।

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी ?

मिर्जा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिये—उसी घर में।

मीर—उस घर में क्यों रखूँ ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था ?

मिर्जा—मुहरा आप कयामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी ? फरजी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे।

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तकदीर से होती है ; धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा—तो इस बाजी में आपको मात हो गई ?

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी।

मिर्जा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर—वहाँ क्यों रखूँ ? नहीं रखता।

मिर्ज़ा—क्यों न रखियेगा ? आपको रखना ही होगा।

तक़रार बढ़ने लगी। दोनो अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह! अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्ज़ा बोले—किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये, आप शतरंज क्या खेलियेगा! रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे! यहाँ तो पीढियों से शतरंज खेलते चले आते हैं।

मिर्ज़ा—अजी जाइये भी, ग़ाज़िउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुजर गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं!

मीर—क्यों अपने बुज़ुर्गों के मुँह कालिख लगाते हो—वे ही बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आये हैं।

मिर्ज़ा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न कर।

मीर—ज़बान सँभालिये, वर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं, कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला ?

मिर्ज़ा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आईये, आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर!

मीर—तो यहाँ तुमसे दबनेवाला कौन है ?

दोनो दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं! नवाबी ज़माना था, सभी तलवार, पेशक़ब्ज़, कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनो विलासी थे; पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था—बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें ? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनो ने पैतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाज़ें आईं। दोनो ज़ख़्म खाकर गिरे, और दोनो ने वहीं तड़प-तड़पकर

जाने दे दी। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्होंने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनो बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे मानो इन दोनो वीरो की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित मीनारें इन लाशो को देखती और सिर धुनती थीं।

पंच-परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढी मित्रता थी। साझे मे खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमे न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्र का मूल-मंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनो मित्र बालक ही थे, और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हे शिक्षा-प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की, खूब रकाबियाँ माँजीं, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घटे तक किताबो से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारो के मनुष्य थे। उन्हे शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे, कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिये। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्सग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर सन्तोष कर लेगा, कि विद्योपार्जन मे मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग ही मे न थी, तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वय आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हे अपने सोंटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोंटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँवो में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रिहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कासटेबिल और तहसील का चपरासी—सब उनकी कृपा की आकाक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदर पात्र बने थे।

(२)

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी ; परन्तु उसके निकट-सबंधियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे-चौडे वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दान-पत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हे खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा सी की गई , पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियो पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी—करीमन—रोटियो के साथ कडवी बातों के कुछ तेज तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब वेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बाते सुननी पड़ती थीं।

बुढिया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं! जितना रुपया इसके पेट में झोक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा , पर जब न सहा गया, तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामिनी—के प्रबन्ध मे दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्त को एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निबाह न होगा। तुम मुझे रुपए दे दिया करो, मैं अपना पका-खा लूँगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपए क्या यहाँ फलते हैं? खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिये भी कि नहीं? जुम्मन ने गभीर स्वर से जवाब दिया—तो कोई यह थोडे ही समझा था, कि तुम मौत से लड़कर आई हो?

खाला बिगड गई उन्होने पचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देखकर मन ही-मन हँसता है। वह बोले—हाँ, जरूर पचायत करो। फ़ैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटपट पसन्द नहीं।

पंचायत मे किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी सन्देह न था। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, जो उनके अनुग्रहों का ऋणी न हो? ऐसा कौन था, जो उनको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किसमे इतना बल था, जो उनका सामना कर सके? आसमान के फ़रिश्ते तो पचायत करने आवेंगे ही नही।

(३)

इसके बाद कई दिन तक बूढी खाला हाथ में एक लड़की लिये आस पास के गॉवो मे दौड़ती रही। कमर झुककर कमान हो गई थी। एक-एक पग चलना दूभर था, मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना ज़रूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढिया ने दुःख के ऑसू न बहाये हो। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ हॉ करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियॉ दी। कहा—कब्र मे पाँव लटके हुए हैं, आज मरे, कल दूसरा दिन, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हे क्या चाहिये? रोटी खाओ, और अल्लाह का नाम लो। तुम्हे अब खेती-बारी से क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हे हास्य के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल। जब इतनी सामग्रियॉ एकत्र हों, तब हँसी क्यो न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीनवत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखडे को ग़ौर से सुना हो, और उसको सात्वना दी हो। चारों ओर से घूम-घामकर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई। लाठी पटक दी, और दम लेकर बोली—बेटा, तुम भी दम-भर के लिए मेरी पंचायत मे चले आना।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आई। अब आने-न-आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आने को आ जाऊँगा ; मगर पचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा ?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ ? अपनी खुशी ! जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाड के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी संपत्ति लुट जाय, तो उसे खबर नहीं होती ; परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका ; पर उसके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे—

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

(४)

संध्या-समय एक पेड के नीचे पचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होने पान, इलायची, हुक्के तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वय अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठे हुए थे। जब कोई पचायत में आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिडियों की कलरव-युक्त पचायत पेडो पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अगुल जमीन भर गई ; पर अधिकाश दर्शक ही थे। निमत्रित महाशयों मे से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असंभव था, कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुण्ड-के-झुण्ड जमा हो गये थे।

पच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की—

'पंचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने

भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप-लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ताहयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल-भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा, पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी-दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसे अपना दुःख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमे कोई ऐब देखो, मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन मे बुराई देखो, तो उसे समझाओ, क्यों एक बेकस की आह लेता है! मैं पचों का हुक्म सिर माथे पर चढाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियो को जुम्मन ने अपने गाँव मे बसा लिया था, बोले—जुम्मन मियाँ, किसे पंच बदते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पच कहेंगे, वही मानना पडेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों मे विशेषकर वे ही लोग दीख पडे, जिनसे किसी-न-किसी कारण उसका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहे, उसे बदे, मुझे कोई उज्र नही।

खाला ने चिल्ला कर कहा—अरे अल्लाह के बन्दे! पचों का नाम क्यों नही बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई, वह बोलीं—बेटा, खुदा से डरो। पच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपच बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे; परन्तु भावो को छिपाकर बोले—अलगू चौधरी ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन मिसिर वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नही चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले—खाला तुम जानती हो, कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गंभीर स्वर से कहा—बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले—शेख जुम्मन! हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा तुम्हारी सेवा करते रहे हैं; मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था, कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांत-चित्त होकर बोले—पंचो तीन साल हुए, खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज़ है, मगर औरतों में जरा अनबन रहती है, इसमें मेरा क्या बस है! खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती हैं। जायदाद जितनी है, वह पंचो से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नहीं। नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले में न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइन्दा पंचों को अख्तियार है, जो फैसला चाहे, करें।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे, कि अलगू को हो क्या गया! अभी यह अलगू मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था! इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गई, कि मेरी जड़ खोदने

पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है! क्या इतने दिनो की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे, कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख! पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हे यह नीति-संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है, कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है; कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद समझा जाय।

(५)

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे, और गले पर छुरी फेरे! इसे समय का हेर-फेर के सिवा और क्या कहे? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है। यही कलयुग की दोस्ती है? अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता! यह हैजा-प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मो के दण्ड है।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीतिपरा-यणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे—इसका नाम पंचायत है! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया! दोस्ती दोस्ती की जगह है; किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की

आवभगत ज़्यादा करने लगा। वे मिलते जुलते थे मगर उसी तरह, जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घडी यही चिता रहती थी, कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

(६)

अच्छे कामो की सिद्धि मे बड़ी देर लगती है; पर बुरे कर्मों की सिद्धि में यह बात नहीं होती। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोई मोल लाये थे। बैल पछाही जाति के सुन्दर, बडे-बड़े सींगोवाले थे। महीनो तक आस-पास के गाँवों के लोग उनके दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पचायत के एक ही महीने बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा—यह दग़ाबाजी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय; पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को सदेह हुआ, कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही उस दुर्घटना का दोषारोप किया। उसने कहा—जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनो देवियो ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यङ्ग, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलकारों मे बातें हुई। जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उसने अपनी पत्नी को डॉट-डपटकर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क-पूर्ण सोंटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड बहुत ढूँढ़ा गया; पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी, कि इसे बेच डालना चाहिये। गाँव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव से गुड़-घी लादकर मडी ले जाते, मडी से तेल-नमक भर लाते और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होने सोचा यह बैल हाथ

लगे, तो दिन-भर में वेखटके तीन खेपें हों। आज कल तो एक ही खेप के लाले पडे रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौरी की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने मे दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी ग़रज़ थी ही, घाटे की परवा न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फ़िक्र थी, न पानी की; बस, खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था, कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था, तो चैन की वंशी बजती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली मे जोते जाते थे। तब खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ़ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठो पहर की खपन! महीने-भर ही में वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आई थीं, पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहुजी ने दूना बोझा लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। उस पर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ; पर साहुजी को जल्द पहुँचने की फ़िक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बडी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़कर खीचा, नथनों मे लकड़ी ठूँस दी, पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहुजी को कुछ शका हुई। उन्होंने बैल को

गौर से देखा, खोलकर अलग किया ; और सोचने लगे, कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाये ; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये, और कोसने लगे—अभागे! तुझे मरना ही था, तो घर पहुँचकर मरता! ससुरा बीच रास्ते ही मे मर रहा! अब गाडी कौन खींचे? इस तरह साहुजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो ढाई-सौ रुपए कमर में बँधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरा नमक के थे, अतएव छोड़कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाडी पर ही लेट गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहुजी आधीरात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे ; पर पौ फटते ही जो नींद टूटी, और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब! घबराकर इधर-उधर देखा, तो कई कनस्तर तेल भी नदारत! अफसोस मे बेचारे ने सिर पीट लिया, और पछाड़ खाने लगा। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगीं—निगोडे ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया, कि जन्म-भर की कमाई लुट गई!

इस घटना को हुए कई महीना बीत गये। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते, तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाये हुए कुत्तों की तरह चढ बैठते, और अड-बड बकने लगते—वाह! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हे दामों की पडी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले है! आँखों मे धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनिये के बच्चे है, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे? पहले जाकर किसी गड्ढे मे मुँह धो आओ तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना-भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे।

चौधरी के अशुभचिन्तकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी

एकत्र हो जाते, और साहुजी के बर्राने की पुष्टि करते। इस तरह फटकारें सुनकर बेचारे चौधरी अपना सा मुह लेकर लौट आते; परन्तु डेढ सौ रुपयो से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पडे। साहुजी बिगडकर लाठी ढूँढने घर चले गये। अब सहुआइनजी ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथा-पाई की नौबत आ पहुची। सहुआइन ने घर में घुसकर किवाड़े बन्द कर लिये। शोर गुल सुनकर गॉव के भलेमानस जमा हो गये। उन्होंने दोनो को समझाया। साहुजी को दिलासा देकर घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे, कि इस तरह सिरफुटौवल से काम न चलेगा। पचायत कर लो। जो कुछ तय हो जाय, उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगू ने भी हामी भर ली।

(७)

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनो पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे फिर पचायत बैठी। वही सध्या का समय था। खेतो में कौए पचायत कर रहे थे। विवाद-ग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं; और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, तब तक वे रखवाल की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियो पर बैठी शुक-मण्डली में यह प्रश्न छिडा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हे बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हे स्वय अपने मित्रो से दगा करने में भी संकोच नहीं होता।

पचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा—अब देरी क्यो है? पंचो का चुनाव हो जाना चाहिये। बोलो चौधरी, किस-किसको पंच बदते हो?

अलगू ने दीन भाव से कहा—समझू साहु ही चुन लें।

समझू खडे हुए और कड़ककर बोले—मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के

मित्र थे। वह बात तो ताड़ गये। पूछा—क्यों चौधरी, तुम्हे कोई उज्र तो नहीं ?

चौधरी ने निराश होकर कहा—नहीं, मुझे क्या उज्र होगा ?

* * *

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते है, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-सम्पादक अपनी शान्ति-कुटी मे बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मन्त्रि-मण्डल पर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर आते हैं, जब वह स्वय मन्त्रि-मण्डल में सम्मिलित होता है। मण्डल के भवन में पग धरते ही उनकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल-कलंक समझते है, परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांत-चित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो-कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश्य है—और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिये, मुझे सत्य से जौ-भर भी टलना उचित नहीं !

पंचों ने दोनो पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किये। बहुत देर तक दोनो दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे, कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिये ; परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे, कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दण्ड भी

देना चाहते थे। जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया—अलगू चौधरी और समझू साहु! पंचो ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है, कि बैल का पूरा दाम दे। जिस वक्त उन्होने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिये जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई, कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया, और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले—समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है, अतएव उससे दण्ड लेना चाहिये।

जुम्मन बोले—यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नही।

झगड़ू साहु ने कहा—समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिये।

जुम्मन बोले—यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। वह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी है।

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खडे हुए, और जोर से बोले—पंच-परमेश्वर की जय!

चारो ओर से प्रतिध्वनि हुई—पंच-परमेश्वर की जय!

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—इसे कहते है न्याय। यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते है। यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कर सकता है?

थोडी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये, और उनके गले लिपटकर बोले—भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था, पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया, कि पंच की जबान से खुदा बोलता है।

अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनो के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

शंखनाद

भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे। गाँव में उनका बड़ा मान था। दारोगाजी उन्हे टाट बिना जमीन पर न बैठने देते। मुखिया साहब की ऐसी धाक बँधी हुई थी, कि उनकी मर्जी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे वह सास बहू का विवाद हो, चाहे मेड़ या खेत का झगडा, चौधरी साहब के शासनाधिकार को पूर्ण रूप से सचेत करने के लिए काफी थी। वह तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूत के सिवा किसी अभियोग को सफलता-सहित चलाने में जिन बातो की जरूरत होती है, उन सब पर विचार होता और चौधरीजी के दरबार से फैसला हो जाता। किसी को अदालत तक जाने की जरूरत न पडती। हाँ, इस कष्ट के लिए चौधरी साहब कुछ फीस जरूर लेते थे। यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हे धीरज से काम लेना पडता तो गाँव में आफत मच जाती थी; क्योंकि उनके धीरज और दारोगाजी के क्रोध मे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। साराश यह, कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

(२)

चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे। बडे अनुभवी, बडे मर्मज्ञ, बडे नीतिकुशल। मिर्जई की जगह कमीज पहनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरी को नापसन्द थे; पर बेचारे विवश थे, क्योंकि अदालत और कानून के मामले बितान के हाथों में थे। वह कानून का पुतला था। कानून की दफाएँ जबान पर रखी रहती थीं गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे। बुद्धि के मन्दे; लेकिन शरीर से बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न

जमती हो, वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक, साथ ही उद्दण्ड भी था। मुहर्रम मे ढोल इतने जोरो से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फँसाने का बड़ा शौकीन था। बडा रँगीला जवान था। खँजडी बजा बजाकर जब वह मीठे स्वर से खयाल गाता, तो रग जम जाता। उसे दगल का ऐसा शौक था, कि कोसो तक धावा मारता; पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे, कि उनके इन व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की-धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय, किसी का उस पर कुछ भी असर न हुआ। हाँ, भावजे अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थीं; वे अभी तक उसे कडवी दवाइयाँ पिलाये जाती थी; पर आलस्य वह राज-रोग है, जिसका रोगी कभी नहीं सँभलता। ऐसा कोई बिरला ही दिन जाता होगा, कि बाँके गुमान को भावजो के कटु वाक्य न सुनने पडते हों। ये विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदय मे भी चुभ जाते, किन्तु यह घाव रात-भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकान के साथ ही यह पीड़ा भी शान्त हो जाती! तड़का हुआ; उसने हाथ-मुँह धोया, बशी उठाई और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैतरे बदलते रहते, और भाई लोग तीखी निगाह से देखा करते, पर अपनी धुन का पूरा बाँका गुमान उन लोगो के बीच से इस तरह अकड़ता चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तो के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिए क्या-क्या उपाय नहीं किये गये। बाप समझाता—बेटा, ऐसी राह चलो, जिसमे तुम्हे भी पैसे मिलें, और गृहस्थी का भी निबाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे? मैं पका आम हूँ—आज टपक पड़ूँ या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा? भाई बात भी न पूछेंगे, भावजो का रग देख ही रहे हो। तुम्हारे भी लड़के-बाले है, उनका भार कैसे सँभालोगे? खेती मे जी न लगे, कहो काँस्टिबिली मे भरती करा दूँ। बाँका गुमान खड़ा-खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था—कभी न पसीजता। इन महाशय

के अत्याचार का दंड उनकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। कड़ी मेहनत के घर के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुएँ से पानी लाती, आटा पीसती, और इतने पर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्य-बाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह पति से कई दिन रूठी रही, तो बाँके गुमान कुछ नर्म हुए! बाप से जाकर बोले—मुझे कोई दूकान खोलवा दीजिये। चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपए लगाकर कपड़े की दूकान खुलवा दी। गुमान के भाग जगे। तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाये, मलमल का साफा धानी रंग में रँगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होता था! दूकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और खयाल की तानें उड़ रही हैं—

'चल झटपट री, जमुना-तट री, खड़ो नटखट री'

इस तरह तीन महीने चैन से कटे। बाँके गुमान ने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले; यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गई। टाट के टुकड़े के सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँ में गिरने चले, भावजों ने घोर आन्दोलन मचाया—अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नसीब न हो, और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टू का कफन बन गई। अब कौन मुँह दिखावेगा? कौन मुँह लेकर घर में पैर रखेगा, किन्तु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिये वह फिर घर आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ बितान उसके ये ठाट-बाट देखकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नैनसुख का कुरता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े, और यों बन-ठनकर निकले? ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याह में भी न मिले होंगे। मीठे-शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्त में जब यह जलन न सही गई, और अग्नि भड़की, तो एक दिन कानूनदाँ बितान की पत्नी गुमान के सारे कपड़े उठा लाई और उन पर मिट्टी का तेल उडेलकर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते-देखते जल कर राख हो गये। गुमान

रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरी ने यह दृश्य देखा, और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घर को जलाकर तब बुझेगी।

(३)

यह ज्वाला तो थोड़े देर में शांत हो गई; परन्तु हृदय की आग ज्यों-की-त्यों दहकती रही। अन्त में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर के सब मेंबरों को एकत्र किया, और इस गूढ़ विषय पर विचार करने लगे, कि बेड़ा कैसे पार हो। बितान से बोले—बेटा, तुमने आज देखा कि बात-की-बात में सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकदमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो, कि घर डूबने से बचे। मैं तो यह चाहता था, कि जब तक चोला रहे, सबको समेटे रहूँ; मगर भगवान् के मन में कुछ और ही है।

बितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनी के सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे, कि श्रीमतीजी बोल उठीं—दादाजी! अब समझाने-बुझाने से काम न चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे की जितनी पीर बाप को होगी, भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ—गुमान का तुम्हारी कमाई मे हक है, उन्हे कंचन के कौर खिलाओ, और चाँदी के हिंडोले मे झुलाओ। हम मे न इतना बूता है, न इतना कलेजा। हम अपनी झोपड़ी अलग बना लेंगे। हाँ, जो कुछ हमारा हो वह हमको मिलना चाहिये। बाँट-बखरा कर दीजिये। बला से चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँ तक दुनिया की लाज ढोवें।

नीतिज्ञ बितान पर इस प्रबल वक्तृता का असर हुआ। वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरे से झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था, कि इस प्रस्ताव को इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गम्भीरता से बोले—जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या ग़ैरमन्कूला, आपके हीन-हयात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें

मौजूद हैं। ज़मींदार को साकितुल्-मिल्कियत करने का कोई इस्तहकाक़ नहीं है।

अब मदबुद्धि शान की बारी आई ; पर बेचारा किसान, बैलों के पीछे आँखें बद करके चलनेवाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता। दुविधा में पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर यह कठिन कार्य संपन्न किया। बोली—बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं। कोई तो कलेजा तोड़-मोड़कर कमाये ; मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाकने को वस्त्र तक न मिले, और कोई सुख की नींद सोवे, हाथ बढ़ा-बढ़ा के खाय ! ऐसी अँधेरी नगरी में अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकठ से अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले—क्यों बेटा, तुम्हे भी यही मजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा। वह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं। बोलो, क्या कहते हो ? कुछ काम-धन्धा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं ?

गुमान में धैर्य की कमी न थी। बातों को इस कान सुनकर उस कान उडा देना उसका नित्य-कर्म था ; किन्तु भाइयों की इस 'जन-मुरीदी' पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयों की जो इच्छा है, वही मेरे मन में भी लगी हुई है। मैं भी इस जजाल से अब भागना चाहता हूँ, मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्य मे चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे। मेरे भाग्य में तो चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूँ ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता ? आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए है ! अपनी अपनी फ़िक्र कीजिये, मुझे आध सेर आटे की कमी नहीं है।

इस तरह की सभाएँ कितनी ही बार हो चुकी थीं ; परन्तु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इससे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया। जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता।

अन्त में बूढ़े चौधरी गये, और मना के लाये। अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती चलने लगी।

(३)

पाँडे के घर चूहों की तरह, चौधरी के घर मे बच्चे भी सयाने थे। उनके लिए मिट्टी के घोड़े और लकड़ी की नावें, कागज की नावें थीं। फलों के विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था, जिसे वे बीमारियों का घर न समझते हो, लेकिन गुरदीन के खोंचे मे ऐसा प्रबल आकर्षण था, कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चों की तरह यदि वे सोते भी हों, तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गॉव में साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकाक्षा मे कितने ही बालको को बिना किंडरगार्टन की रगीन गोलियों के ही, सख्याएँ और दिनो के नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ा-सा मैला कुचैला आदमी था, किन्तु आस-पास में उसका नाम उपद्रवी लड़कों के लिए हनुमान-मत्र से कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचे पर बालकों का ऐसा धावा होता, कि मक्खियों की असख्य सेना को भी रण-स्थल से भागना पडता था। और जहाँ बच्चों के लिए मिठाइयॉ थीं, वहॉ गुरदीन के पास माताओं के लिए इससे भी ज्यादा मीठी बातें थी। माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसे न रहने का बहाना करे, पर गुरदीन चट-पट मिठाइयों का दोना बच्चों के हाथ में रख ही देता, और स्नेह-पूर्ण भाव से कहता—बहूजी पैसों की कुछ चिन्ता न करो, फिर मिल रहेगे, कही भागे थोडे ही जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिये है, तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं के बदौलत मेरे बाल-बच्चे भी जीते हैं। अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना, कैसे ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहार चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे 'नौ नगद सही, तेरह उधार नहीं' वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यो न हो, किंतु मिष्ठभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमे संशोधन करने की जरूरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खडे गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेडों पर चढ गये, और कोई-कोई अनुराग से विवश होकर गॉव से बाहर निकल गये थे। सूर्य भगवान् अपना सुनहला थाल लिये पूरब से पश्चिम मे जा पहुँचे थे, इतने ही में गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लड़को ने दौडकर उसका दामन पकड़ा, और आपस मे खींचातानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो ; कोई अपने घर का न्योता देता था। सब से पहले भानु-चौधरी का मकान पड़ा। गुरदीन ने अपना खोंचा उतार दिया। मिठा-इयों की लूट शुरू होगई। बालको और स्त्रियों का ठठ्ठ लग गया। हर्ष और विषाद, संतोष, और लोभ, ईर्ष्या और लोभ, द्वेष और जलन की नाट्य-शाला सज गई। क़ानूनदाँ बितान की पत्नी अपने तीनो लड़कों को लिये हुए निकली। शान की पत्नी भी अपने दोनो लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बाते करनी शुरू कीं। पैसे झोली मे रखे, धेले की मिठाई दी और धेले धेले का आशीर्वाद। लडके दोने लियें उछलते-कूदते घर मे दाखिल हुए। अगर सारे गॉव में कोई ऐसा बालक था, जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था।

यह कठिन था, कि बालक धान अपने भाइयों-बहनो को हँस-हँस और उछल-उछलकर मिठाइयाँ खाते देखकर सब्र कर जाय। उस पर तुर्रा यह कि वे उसे मिठाइयॉ दिखा-दिखाकर ललचाते और चिढाते थे। बेचारा धान चीखता और अपनी माता का आँचल पकड-पकडकर दरवाजे की तरफ़ खींचता था ; पर वह अबला क्या करे ? उसका हृदय बच्चे के लिए ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियो की निष्ठुरता पर, और सब से ज्यादा अपने पति के निखट्टूपन पर कुढ कुढकर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यो दूसरों का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते ? उसने धान को गोद में उठा लिया, और प्यार से दिलासा देने लगी—बेटा, रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा, तो मैं तुम्हे बहुत-सी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा

दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे ? यह कहते-कहते उसकी आँखे भर आई। आह ! यह मनहूस मगल आज ही फिर आवेगा, और फिर ये ही बहाने करने पड़ेंगे। हाय अपना प्यारा बच्चा धेले की मिठाई को तरसे, और घर मे किसी का पत्थर सा कलेजा न पसीजे। वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी, और धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला, तो माँ की गोद से जमीन पर उतर कर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। मा ने बहुत बहलाया, फुसलाया यहाँ तक कि उसे बच्चे के इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव-हृदय के रहस्य कभी समझ मे नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, कहाँ ऐसी झल्लाई, कि उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाये और घुड़ककर बोली—चुप रह अभागे ! तेरा ही मुँह मिठाई खाने का है ! अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है!

बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक बडे ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे, और चुभ गये। शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रूई को धुनकने के लिए ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी—चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो—उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आई, आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चे को गोद मे उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर मे बोला—बच्चे पर इतना क्रोध क्यो करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दण्ड चाहे दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानों मे शखनाद कर मुझे कर्म-पथ मे प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।